कृष्णाङ्घ्रिपाथोजमधुव्रतस्य सदागमाभ्यासपरायणस्य ।
धृतावतारस्य नु कालिदासकवे रमेशस्य कृपाश्रयेण ।

श्रीमत्पण्डितरामावतारमिश्रेण विरचितः

# व्यञ्जनावृत्तिविचारः

सम्पादक एवं टीकाकार
डॉ० शिवशङ्कर पण्डित

रुक्मिणी प्रकाशन
राँची, भारत



कृष्णाङ्घ्रिपाथोजमधुव्रतस्य सदागमाभ्यासपरायणस्य ।
धृतावतारस्य नु कालिदासकवे रमेशस्य कृपाश्रयेण ।

श्रीमत्पण्डितरामावतारमिश्रेण विरचितः

# व्यञ्जनावृत्तिविचारः

सम्पादक एवं टीकाकार
**डॉ० शिवशङ्कर पण्डित**
एम० ए०, बी० एल्०, पी-एच्० डी०;
रीडर, अङ्ग्रेजी विभाग,
सेण्ट जेवियर्स कॉलेज, राँची ( बिहार )

**रुक्मिणी प्रकाशन**
**राँची, भारत**

★प्रकाशक :
रुक्मिणी प्रकाशन
इन्द्रपुरी, राँची—८३४००५
बिहार, भारत



★संस्करण : प्रथम, संवत्, २०४२

★मूल्य : ७ रु० ( सात रुपये मात्र )

★मुद्रक : राष्ट्रीय प्रेस, राँची

# आमुख

कालिदास पुरस्कार से सम्मानित महाकवि श्रीमत्पण्डित रामावतार मिश्र (१३ जनवरी १८९९—२४ जून १९८४) विरचित **व्यञ्जनावृत्तिविचारः**[1] की रचना १९४६ ई० में ही हो चुकी थी। **श्रीदेवीचरितं महाकाव्यम्**[2] के आमुख में चर्चित गट्ठर में ही इसकी भी पाण्डुलिपि थी जिसे मिश्रजी ने मुझे सस्नेह सुपुर्द की थी। **श्रीदेवीचरितं महाकाव्यम्** तो मिश्रजी के जीवनकाल में ही प्रकाशित हो गया था; किन्तु अन्य रचनाओं को वह प्रकाशित नहीं देख पाये। **व्यञ्जनावृत्तिविचारः** भी आज के पूर्व प्रकाशित नहीं हो सका।

व्यञ्जना पर कई पुस्तकें हैं, किन्तु मिश्रजी ने छात्रों की कठिनाइयों को ध्यान में रख कर इस गूढ़ विषय को सरलतम बना कर पाठकों के समक्ष रखा है। इनकी अन्य रचनाओं की भाँति यह पुस्तक भी सरल एवं प्रसाद गुणयुक्त है। सहृदय पाठक स्वयं इसे पढ़ कर यह अनुभव करेंगे कि लक्षण ग्रन्थ जैसे जटिल विषय को भी मिश्रजी ने कितना सरल बना दिया है।

---

१. पहले इसका मैंने नाम **व्यञ्जनोद्धारः** रखा था, किन्तु बाद में **व्यंजनावृत्तिवचारः** रखना ही उचित समझा गया। वस्तुतः मिश्रजी ने दोनों नाम (विकल्प से) दिये थे।

२. **श्रीदेवीचरितं महाकाव्यम्** की रचना पर ही महाकवि मिश्रजी को उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी ने कालिदास पुरस्कार—१९८३ से सम्मानित किया था। (विशेष जानकारी के लिए इसका आमुख अवश्य देखें।)



इस पुस्तक की हिन्दी टीका मैंने यही समझ कर की है कि मात्र संस्कृत-प्रेमी ही नहीं, अपितु हिन्दी-प्रेमी पाठक भी इसका रसास्वादन कर सकें। गया मण्डलान्तर्गत टेकारी निकटस्थ पंचाननपुर निवासी श्री पण्डित सत्य-नारायण मिश्र एवं इनके अनुज श्री पण्डित देवनारायण मिश्र के प्रति आभार प्रकट करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं चूँकि इनकी सहायता से ही इन काव्यों की हिन्दी टीका सम्भव हो सकी है। यह पुस्तक कई मित्रों के सहयोग से प्रकाशित हो रही है जिनमें अनेक ने अपना नाम देने से मुझे रोका है। इस महान् कार्य में योगदान देनेवाले सभी मित्रों का मैं आभारी हूँ और उनकी मंगलकामना करता हूँ।

अन्त में सभी विद्वान् एवं सुधी पाठकों को यह ग्रंथ इस निवेदन के साथ अर्पित है कि यदि इसमें कुछ त्रुटियाँ रह गयीं हों तो सूचित करने की कृपा करेंगे जिससे दूसरे संस्करण में उनका निराकरण हो सके।

[signature] पण्डित

एम० ए०, बी० एल्०, पी-एच्० डी०
रीडर, अङ्गरेजी विभाग,
सेण्ट जेवियर्स कॉलेज, राँची (बिहार

# व्यञ्जनावृत्तिविचारः

उदेतु हृदयव्योम्नि गुर्वङ्घ्रिनखचन्द्रमाः ।
प्रकाशयन्तु सम्पूर्णानर्थांस्तच्छक्तयः शुभाः ॥१॥

मेरे हृदय रूपी आकाश में गुरु के चरणनख रूपी चन्द्रमा उदित हों तथा उस (चन्द्रमा) की शुभ शक्ति (किरणें) समस्त अर्थों को मेरे सामने प्रकाशित करें ।१।

यावन्ति साधनान्यत्र लभ्यन्तेऽर्थोपपत्तये ।
तेषामन्यतमेनैव रसादिर्ज्ञायते नवा ? ॥२॥
विमर्श इति सञ्जाते, यत्क्षमं तत्प्रकाशने ।
यदक्षमञ्च, तत्सर्वं यथामति विविच्यते ॥३॥

अर्थों को सिद्ध करने के लिए जितने साधन यहाँ उपलब्ध हैं उनमें से किसी एक से रसादि का ज्ञान होता है या नहीं ?—मैं अपनी बुद्धि के अनुसार उन सब का विवेचन करता हूँ जो अर्थ प्रकाश करने में समर्थ और असमर्थ हैं ।२-३।

मुख्यार्थवादिनी तावदभिधा गृह्यतेऽधुना ।
सैव क्षमा समस्तांश्चेदर्थान् कर्तुं किमन्यया ? ॥४॥

शब्द के मुख्यार्थ को बतानेवाली अभिधा (शक्ति) को ही यदि स्वीकार कर लिया जाय तो वही सभी अर्थों को प्रकाशित करने में समर्थ है और तब शब्द की दूसरी शक्तियों की क्या आवश्यकता है ? ।४।

योर्थः सङ्केतितो यत्र शब्दे, तस्यैव बोधिका ।
अभिधा, नात्र काव्ये च स एवार्थोस्ति केवलः ॥५॥

जो अर्थ जिस शब्द में संकेतित है उसी का बोधक अभिधा होती है और यहाँ काव्य में केवल वही (संकेतित) अर्थ नहीं होता ।५।

यद्वा, यस्य हि शब्दस्य श्रवणानन्तरञ्च यत् ।
स्वरूपं भासते, तत्र सोऽर्थः सङ्केतितो; यथा— ॥६॥
गोशब्दश्रवणात् सास्नाद्यङ्गवान् कोऽपि प्राणभृत् ।
प्रत्यक्षवद्विभातीह सङ्केतेन स्थिरीकृतः ॥७॥

अथवा जिस शब्द के सुनने के बाद जो अर्थ मालूम पड़ता है वहाँ पर वही अर्थ संकेतित है। उदाहरणार्थ—'गो' शब्द सुन कर सास्ना (लोरी) आदि अंग वाला जीव प्रत्यक्ष जैसा भासित होता है। (अतः) संकेत द्वारा वही (अर्थ) स्थिर होता है।६-७।

बोधयितुं तमेवार्थं शक्तिराद्याऽभिधा क्षमा ।
बोधते क्षमता चास्या नान्यार्थस्य कदाचन ॥८॥

उसी अर्थ को समझाने में शब्द की प्रथम शक्ति अभिधा समर्थ है। उसकी क्षमता उसी अर्थ के बोध कराने में है, दूसरे अर्थ के नहीं।८।

एष शास्त्रस्य सिद्धान्तः "शब्दाः कर्माणि शक्तयः" ।
सम्पाद्यैकतमं कार्यं नान्यत्कर्तुं क्षमाः क्वचित् ॥९॥

इस शास्त्र का सिद्धान्त है 'शब्द', 'कर्म' और 'शक्ति'। ये क्रमशः एक-एक काम ही करने में समर्थ हैं, दूसरा नहीं।९।

यदि कार्यद्वयं कर्तुमेका शक्तिश्च काचन ।
शक्ता, तदुभयं कार्यमक्रमं निश्चितं भवेत् ॥१०॥

यदि दो कार्य करने में एक ही शक्ति समर्थ हो तो उन दोनों कार्यों में कोई क्रम नहीं रह जायगा।१०।

क्रमोऽपि चेद्भवेत्तत्र महाऽनर्थो न संशयः ।
यस्य पूर्वमुपस्थानं तस्य पश्चाद्भवेदपि ॥११॥

यदि वहाँ ( कार्यों में ) क्रम भी हो तो निःसंदेह ही महा अनर्थ हो जायगा। इन (कार्यों) में कौन पहले होगा और कौन बाद में ?।११।

विभावादि रसादीनामेककालावबोधनम् ।
यद्वा पूर्वं विभावादेः रसस्यावगतिर्भवेत् ॥१२॥

विभावादि तथा रसादि का एक ही समय में ज्ञान (बोध) का अथवा विभाव के पूर्व ही रस के ज्ञान का प्रश्न उठता है ।१२।

न तथा जायते ज्ञानं, समीक्ष्येति विचक्षणैः ।
शक्त्यैकयाऽर्थं एकः स्यादिति सिद्धान्तितं स्फुटम् ॥१३॥

वैसा (विभावादि के पूर्व रसादि का) ज्ञान नहीं होता । इसे देखते हुए पंडितों ने यह सिद्धान्त दिया कि एक शक्ति द्वारा एक ही अर्थ (ज्ञान) होता है ।१३।

यत्र बोधो रसादीनां तत्र सङ्केतिता न ते ।
न च तच्छब्दसंश्रुत्या रसरूपं प्रकाशते ॥१४॥

जहाँ रसादि का ज्ञान होता है वहाँ उसका संकेत नहीं रहता । उस शब्द को सुन कर रस का रूप नहीं प्रकट होता ।१४।

रसादिशब्दैः कुत्रापि व्यवहारः कृतो यदि ।
रसाद्यनुगमस्तत्र न स्या, दोषस्तु प्रत्युत ।१५।

रसादि शब्दों से यदि कहीं उनका व्यवहार भी किया जाय तो वहाँ रसादि का ज्ञान नहीं होता, अपितु कुछ दोष ही होता है ।१५।

रसशब्दप्रयोगेऽपि तद्ज्ञानं कुत्रचिद्यदि ।
दृश्यते, तन्मुखेनैव न, विभावादियोगतः ॥१६॥

रस शब्द के प्रयोग से भी यदि वह ज्ञान कहीं हो तो वह मुख से ही होता है, विभावादि के योग से (रस) होता है ।१६।

रसशब्दस्य कुत्रापि न प्रयोगोऽस्ति नामतः ।
विभावादि प्रयोगे च रसस्तत्रानुभूयते ॥१७॥

कहीं भी रस शब्द का प्रयोग नाम के द्वारा नहीं होता, विभावादि के प्रयोग द्वारा रस का अनुभव होता है ।१७।

अन्वयो व्यतिरेकश्च रसस्यातः प्रकाशने ।
रसशब्देन नैवास्ति, विभावादि विमर्शनात् ॥१८॥

इसलिए रस के प्रकाशन में विभावादि के विचार से अन्वय और व्यतिरेक के द्वारा रस का ज्ञान होता है, रस के नाम से नहीं ।१८।

तत्कथं मुख्यया वृत्त्या रसस्य स्यात्प्रकाशनम् ।
विभावादि स्वरूपञ्च न स्वरूपं रसस्य हि ॥१९॥

इसलिए मुख्य वृत्ति (अभिधा) के द्वारा रस का प्रकाशन कैसे हो सकता है, क्योंकि विभावादि (स्वरूप) रस का स्वरूप नहीं है ।१९।

शून्यालये नवोढास्यं पत्युः सुप्तस्य कैतवात् ।
चुम्बित्वा छन्दतस्तत्र पुलकं वीक्ष्य लज्जिता ॥२०॥

शून्य घर में सोने का बहाना करता हुआ पति का मुख कोई नव युवती अपनी इच्छा से चुम्बित करके ( पति का ) रोमाञ्च देख कर लज्जित हो गयी ।२०।

एतत्पद्ये न शृङ्गार रसः सङ्केतितो, न च ।
श्रवणानन्तरं पूर्वं तस्य ज्ञानं प्रजायते ॥२१॥

इस पद के द्वारा शृङ्गार रस का ज्ञान (संकेत) नहीं होता क्योंकि श्रवण के बाद ही रस का ज्ञान होता है ।२१।

किन्तु नायकतच्चेष्टा विभावादि प्रयोगतः ।
तन्मुखेनैव शृङ्गाररसज्ञानं प्रजायते ॥२२॥

नायक की चेष्टा के द्वारा भी, उसके मुख से विभावादि के प्रयोग हो पर भी, शृङ्गार रस का ज्ञान नहीं होता ।२२।

हे पान्थ ! संस्तरो नास्ति ग्रामेऽस्मिन् प्रस्तरस्थले ।
पयोधरमिमं वीक्ष्योन्नतं वससि चेद्वस ॥२३॥

(सन्ध्या समय किसी नायिका ने किसी नायक से कहा—) हे पथिक पत्थर के बने इस गाँव में बिस्तर नहीं है। उन्नतपयोधर (स्तन/बादल को देख कर यदि वसना चाहो तो वसो। (इसमें ध्वनि है, किन्तु रस ध्व नहीं है।) ।२३।

उपभोगक्षमसूचेत्त्वमिहा स्वार्थोह्यं न हि ।
सङ्केतितोऽत्र यच्छ्रुत्यैतादृगर्थं स्फुटो भवेत् ॥२४॥

यहाँ उपभोग की क्षमता सूचित किया गया है, न कि अपना अर्थ (अभिधा)। यहाँ संकेतित शब्द सुन कर इसी प्रकार का अर्थ (ध्वनि) स्पष्ट होता है।२४।

एवमेव क्वचित्पद्ये नालङ्कारः प्रतीयते ।
सङ्केतितो, यच्छ्रवणादसौ स्पष्टं प्रभासताम् ।२५।

इसी प्रकार किसी पद में अलङ्कार नहीं प्रतीत होता। जो सुनने से स्पष्ट मालूम होता है वही संकेतित है।२५।

"चालितः सुदृढाङ्गेन बाणो लक्ष्ये च कुत्रचित् ।
तद्भित्त्वा पुनरन्यच्च भिनत्ति बहुवेगतः ॥२६॥

"दृढ़ अंग वाले द्वारा कहीं निशाने पर बहुत वेग से चलाया हुआ बाण उसे वेध कर अन्य को भी वेधता है।२६।

"य सङ्केतितमर्थं प्राग् बोधयित्वाऽपरं पुनः ।
अर्थं बोधयितुं शक्ता शक्तिराद्याऽभिधा तथा" ॥२७॥

"उसी प्रकार आदि शक्ति अभिधा संकेतित अर्थ का बोध करा देने पर व्यंग्य अर्थ का भी बोध कराता है"।२७।

यस्येति वाक्प्रपञ्चोऽस्ति सम्यग्वेत्ता स नो, यतः ।
सार्वत्रिकोष सिद्धान्तः "शक्तिरेकार्थबोधिनी" ॥२८॥

इस प्रकार का जिसका वाक्प्रपञ्च है उसे ठीक ज्ञान नहीं है। "शक्ति एक ही अर्थ को प्रकाशित करती है"—यही सिद्धान्त है।२८।

यद्वा सम्पृच्छ्यते विद्वन् ! चेदर्थद्वयबोधिनी ।
अभिधा, तत्कथं नासौ लक्ष्यार्थमपि बोधयेत् ? ॥२९॥

हे विद्वान् ! मैं पूछता हूँ कि यदि अभिधा शक्ति दोनों अर्थों का बोध करानेवाली है तो वह लक्ष्यार्थ का बोध भी क्यों नहीं कराती ?।२९।

रसादेर्बोधने तस्याः क्षमता जायते दृढा ।
लक्ष्यार्थबोधने पंगुः कथं जाता भवन्मते ? ।३०।

यदि आप के मत में रसादि का बोध कराने में अभिधा शक्ति दृढ़ समर्थ हो तो यह लक्ष्यार्थ का बोध करने में लंगड़ी क्यों हो गयी ? ।३०।

भवता कथ्यते चेत्स बाणो लक्ष्यं भिनत्ति तत् ।
परं, यत्पूर्वपृष्ठस्थं, रसादिर्वाच्यपृष्ठगः ।३१।

यदि आप कहते हैं कि बाण पहले लक्ष्य को भेद कर उसके पृष्ठ भाग में दूसरे का भी भेदन करता है, तो रसादि पृष्ठ भाग में होना चाहिए ।३१।

अभिधा मूलरूपत्वाद्रसादियंदि तादृशः ।
वाच्यानुगमन, स्तद्वल्लक्ष्यार्थोऽपि निजस्थले ।३२।

इस प्रकार यदि अभिधा रसादि का मूलरूप हो तो लक्ष्यार्थ भी अपने स्थान पर वाच्यार्थ का बोध करावेगा ।३२।

तत्कथं साध्यते बाण व्यापारोऽस्ति यथाऽभिधा ।
प्रतारणं रसज्ञानामन्यथाऽ दूरदर्शिता ।३३।

जिस प्रकार अभिधा व्यापार है, उसी प्रकार बाण का प्रयोग कैसे हो सकता है ? रसज्ञों को यह प्रताड़न (ठगना) है अथवा यह अदूरदर्शिता है ॥३३॥

कविभिः कल्पिता येऽर्था व्यङ्ग्यरूपाः प्रयत्नतः ।
चेद्वाच्यसमकक्षास्तेऽभिधाबोध्याः कथं न हि ? ।३४।

कवियों ने प्रयत्न से जिन व्यङ्ग्यादि अर्थों की कल्पना की हैं वे यदि वाच्यार्थ के समकक्ष हों तो अभिधा द्वारा बोधित क्यों नहीं होतीं ? ।३४।

अत्रापि विषये कश्चित्प्रकाशः पात्यते लघुः ।
उभयोरैक्यमेवास्ति पृथक्त्वं वा महत्तरम् ? ।३५।

इस विषय पर भी थोड़ा प्रकाश डालता हूँ कि दोनों में एकता है या पृथकता है अथवा बड़ाई-छोटाई है ।३५।

वक्तृबोध्यादि भेदेन जायते महदन्तरम् ।
वाच्यव्यङ्ग्यार्थं सङ्घाते न सावर्ग्यं कथञ्चन ।३६।

वक्ता और बोध्य आदि के भेद से दोनों में बहुत अन्तर है; वाच्यार्थ और व्यङ्ग्यार्थ के मेल में कभी भी समानता नहीं है ।३६।

आच्छादयति खं मेघो वाक्यमेतन्निगद्यते ।
मेघाच्छन्नं वियज्जातं वाच्यार्थं एक एव हि ।३७।

मेघ आकाश को ढक लेता है। इस वाक्य को (इस प्रकार भी) कहा जाता है कि मेघ द्वारा आकाश ढक दिया गया। (इन दोनों वाक्यों का) वाच्यार्थ एक ही होता है ।३७।

तापोऽधुना गतो दूरमिति सर्वेषु सिद्ध्यति ।
समाजे कृषकाणां चेदुक्तमेतत्तदास्य तु ।३८।
सुवृष्टिर्भविता शीघ्रं कृषिकार्यं चलिष्यति ।
रसिकेषु, विहारोऽद्य भूधरेषु विधीयताम् ।३९।
पथिकेषु, च विश्रामः कर्त्तव्योऽत्रैव साम्प्रतम् ।
कवीनां निकटे, किञ्चिद्वर्षामादाय वर्ण्यताम् ।४०।
वियोगिनिवहे, तूर्णं प्रस्थानं स्याद्गृहं प्रति ।
वियोगिनीषु, कान्तानां शीघ्रमागमनं भवेत् ।४१।
विलासिनीषु, कालोयं कृष्णाभिसरणोचितः ।
वीरेषु, युद्धविश्राम समयः समुपस्थितः ।४२।

इस समय ताप दूर हो गया—इन शब्दों को समाज में सभी जानते हैं, किन्तु ये ही शब्द कृषकों से कहे जायें तो उन्हें ज्ञात होता है कि अब अच्छी वर्षा होगी और शीघ्र ही खेती का काम चलेगा। रसिकों को ज्ञात होता है कि अब पर्वतों पर विहार होगा। पथिकों को इस समय यहीं विश्राम करना चाहिए, कवियों के निकट वर्षा ऋतु का कुछ वर्णन करना चाहिए; विरही-समूह में शीघ्र घर की यात्रा करनी चाहिए, वियोगिनियों में शीघ्र ही प्रिय पति को आना चाहिए, विलासिनियों में यह कृष्णाभिसरण का

उचित समय है, वीरों में युद्ध के विश्राम का समय आ गया है इत्यादि का ज्ञान होता है ॥१८--४२॥

एवम्विधा अनेकार्था व्यङ्ग्यरूपा भवन्ति चेत् ।
तत्कथं समकक्षत्वं सम्भवेद्वाच्यव्यङ्ग्ययोः ? ।४३।

इस प्रकार अनेक व्यङ्ग्यरूप अर्थ होते हैं। अतः वाच्यार्थ और व्यङ्-ग्यार्थ में समकक्षता कैसे हो सकती है ? ।४३।

पदार्थमात्रबोधे यः कृतायासो यथाविधि ।
वाच्यार्थस्यावगन्ता स, सचेता व्यङ्ग्यबोधकः ।४४।

पदार्थ ज्ञान के लिए जो विधिपूर्वक परिश्रम करता है वही वाच्यार्थ को जानने वाला है, किन्तु व्यङ्ग्यार्थ जानने वाला सहृदय ही होता है ।४४।

पृथग्बोद्धृद्वये निष्ठः कथमैक्याय कल्प्यते ? ।
अनैक्ये च कथं व्यङ्ग्ये ज्ञेयः शक्त्याद्यया भवेत् ? ।४५।

अलग-अलग दो समझदारों में एकता (अर्थ) की कल्पना कैसे हो सकती है ? अनेकार्थ बोधक व्यङ्ग्य आदि शक्ति प्रथम (अभिधा) से कैसे ज्ञात हो सकती है ? ।४५।

एकोऽर्थो विधिरूपोऽस्ति निषेधात्माऽपरस्तथा ।
विपरीतस्वरूपत्वे किमैक्यं वाच्यव्यङ्ग्ययोः ? ।४६।

एक अर्थ विधिरूप है और दूसरा निषेधरूप । इस प्रकार वाच्य और व्य-ङ्ग्य के विपरीत स्वरूप होने के कारण उनमें एकता कैसे हो सकती है? ।४६।

शब्दोच्चारणमात्रेण वाच्यार्थस्यावबोधनम् ।
व्यङ्ग्यस्य बुद्धिनैर्मल्या, न्निमित्तोऽस्ति विभिन्नता ।४७।

केवल शब्द बोलने से ही वाच्यार्थ का बोध होता है, किन्तु व्यंग्य का बोध बुद्धि की निर्मलता से होती है। (इसका) कारण विभिन्नता है ।४७।

प्रतीतिमात्रं कार्यं हि वाच्यार्थप्रतिपादने ।
व्यङ्ग्यस्य च चमत्कारः, कथमैक्यं भवेद्द्वयोः ।४८।

वाच्य के प्रतिपादन में केवल प्रतीति (ज्ञान) तथा व्यंग्य के बोध में चमत्कार कारण होता है। दोनों एक कैसे हो सकते? ।४८।

वाच्यार्थविगमः पूर्वं पश्चाद्व्यङ्गार्थं बोधनम् ।
द्वयोरैक्यं कथं?, कालभेदो यज्जायते स्फुटः ।४९।

वाच्यार्थ का ज्ञान पहले होता है और व्यंग्यार्थ का बाद में। दोनों एक कैसे हो सकते? काल के भेद होने से दोनों में एकता कैसे हो सकती है? ४९

वाच्यार्थस्याश्रयः शब्द एक एवात्र लभ्यते।
शब्दश्चापि तदंशश्च तदर्थास्त्रिविधास्तथा ।५०।

यहाँ वाच्यार्थ का आधार एक शब्द ही होता है; व्यंग्यार्थ के आधार शब्द, शब्द के अंश तथा उसके अर्थ तीनों होते हैं।५०।

वर्णसंघटनाद्याश्च बहुरूपाश्रया यदि।
व्यङ्ग्यस्य,तत्कथं वाच्यव्यङ्ग्ययोरेकता भवेत् ।५१।

वर्णों की रचना से व्यंग्य का स्वरूप बहुत होता है तो वाच्य और व्यंग्य में एकरूपता कैसे हो सकती है? ।५१।

न कदापि त्वया सार्धं सखि यास्यामि काननम् ।
बिम्बं मत्वा शुकेनायमधरो दश्यतेऽसकृत् ।५२।

हे सखी! मैं तुम्हारे साथ कभी भी जंगल नहीं जाऊँगी। सुग्गा मेरे अधर को बिम्ब फल समझ कर काटता है।५२।

विषयो वाच्यरूपस्य वर्ततेऽर्थस्य नायिका।
तत्कान्तो व्यङ्ग्यरूपस्य, तदैक्यं किं भवेद्द्वयोः ।५३।

वाच्यार्थ का विषय नायिका होती है और व्यंग्यार्थ का बोधक पति। तब दोनों (वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ) में एकता कैसे होगी? ।५३।

रसादिबोधने दक्षा लक्षणाऽपि न दृश्यते।
यतस्तत्प्रतिपाद्यार्थं सदृशो न रसादिकः ।५४।

रसादि बोध कराने में लक्षणा शक्ति भी समर्थ नहीं है, क्योंकि उसके

(लक्षणा के) प्रतिपादित अर्थ के समान रसादिक व्यंग्य नहीं है ।५४।

यस्मिन् वाक्येऽर्थसम्बन्धो जायते न परस्परम् ।
अपवार्यञ्च तद्वाक्यं सर्वत्रैवावलोक्यते ।५५।

जिस वाक्य में अर्थों का परस्पर सम्बन्ध नहीं होता है उसे अपवार्य कहते हैं और वह (वाक्य) सब जगह देखा जाता है ।५५।

परन्तु यदि तद्वाक्यमपवार्यं न कुत्रचित् ।
प्रत्युत ग्राह्यमेव स्यात् सादरं, तद्विचिन्त्यते ।५६।

किन्तु वह वाक्य यदि किसी भी तरह छोड़ने योग्य नहीं, अपितु सादर ग्रहण करने लायक ही हो तो उस पर विचार करना चाहिए ।५६।

एतत्समन्वयाकांक्षी शक्तिमन्यामपेक्षते ।
उपतिष्ठति तत्रैव लक्षणा पृष्ठवर्तिनी ।५७।

इस बात के समन्वय की इच्छा रखने वाले अन्य शक्ति की अपेक्षा करते हैं। वहीं पर लक्षणा पृष्ठ भाग में रहती है ।५७।

उपस्थाय च सा हेतुत्रयमेतदपेक्षते ।
मुख्यार्थबाधमेकञ्च सम्बन्धमपरं तथा ।५८।
निमित्तञ्च तृतीय तद्द्विधा रूढिः प्रयोजनम् ।
विनैतत्रितयञ्चैव लक्षणा स्थातुमर्हति ।५९।

उपस्थित हो कर लक्षणा तीन हेतुओं (कारणों) को चाहती है—पहला मुख्यार्थ का बोध होना, दूसरा लक्ष्यार्थ का सम्बन्ध होना और तीसरा निमित्त कारण जो दो प्रकार का होता है— रूढ़ी और प्रयोजन। इन तीनों के बिना लक्षणा हो ही नहीं सकती ॥५८-५९॥

उदाहरणमेतस्या "गङ्गायां घोषः" इत्यलम् ।
व्यापकं वर्तते, तस्मादिह स्तोकं विविच्यते ॥६०॥

इस (लक्षणा) का उदाहरण "गङ्गायां घोषः' व्यापक है। इसीलिए इस पर कुछ विचार करता हूँ ॥६०॥

गङ्गाशब्दस्य मुख्योऽर्थो जलधारा, न चापरः ।
आधारबोधिनी चापि सप्तमीह्यावलोक्यते ।६१।

'गङ्गा' शब्द का मुख्य अर्थ जल की धारा है, दूसरा नहीं। 'गङ्गायां' में सप्तमी विभक्ति है जो आधार का ज्ञान कराती है।६१।

घोषशब्दार्थ आभीरपल्लीति लोकविश्रुतः ।
आधेय, स्तत्कथञ्चिन्नो मिथः सम्बन्धमर्हति ।६२।

संसार में 'घोष' शब्द का अर्थ आभीर पल्ली (अहीरों का घर या टोला) प्रसिद्ध है। इन दोनों में आधार-आधेय का सम्बन्ध कदापि नहीं हो सकता। ।६२।

अत एवात्र मुख्यार्थबाधः स्पष्टं विलोक्यते ।
वर्तते व्यवहारेऽपि वाक्यमेतच्च, का गतिः ?।६३।

अतः यहाँ पर "गङ्गायां घोष' में मुख्यार्थ का बाध स्पष्ट ही दीखता है। व्यवहार में भी इस वाक्य का यही अर्थ है। क्या किया जाय ?।६३।

लक्षणाऽत्र समागत्य प्रवाहार्थं विधूय च ।
सामीप्यमाप्य सम्बन्धं तटार्थं कुरुते स्फुटम् ।६४।

यहाँ पर लक्षणा आ कर धारा (प्रवाह) का अर्थ छोड़ देती है और दोनों का सामीप्य सम्बन्ध जोड़ कर तट का अर्थ बतलाती है।६४।

भवतोह निमित्तञ्च शैत्याद्यतिशयो महान् ।
एवं लक्षणयार्थस्य लक्ष्यस्यावगमोऽभवत् ।६५।

यहाँ अतिशय शीत (ठंडक) आदि निमित्त कारण है। इस प्रकार लक्षण के द्वारा लक्ष्यार्थ का ज्ञान होता है।६५।

इहैव च निमित्तं यच्छैत्याद्यतिशयोऽभवत् ।
तदर्थबोधने शक्ता शक्तिः केव निरूप्यताम् ?।६६।

यहाँ (लक्ष्यार्थ में) ठंडक का आधिक्य ही निमित्त है। उस अर्थ के ज्ञान करानेवाली कौन-सी शक्ति है—बतलावें।६६।

पूर्वा प्रवाहमात्रश्च द्वितीया तटमात्रकम् ।
विज्ञाप्यार्थमुपक्षीणा नान्यं बोधयितुं क्षमा ।६७।

पहली शक्ति (अभिधा) प्रवाह मात्र अर्थ रखती है और दूसरी (लक्षणा शक्ति) तट मात्र का अर्थ करती है । दोनों अपने-अपने अर्थों का बोध करा कर क्षीण हो जाती हैं । वे अन्य अर्थ का बोध कराने में समर्थ नहीं हैं ।६७।

तुष्ट दुर्जनतामाप्य क्षमा सापि भवेद्यपि ।
तदा मुख्यार्थबाधादि हेतुत्रयमपेक्ष्यते ।६८।

दुर्जन सन्तुष्ट होवें—इस न्याय से वह (लक्षणा शक्ति) यदि समर्थ भी हो तो मुख्यार्थ बाध आदि (मुख्यार्थ बाध, तत्सम्बन्ध, शैत्यातिशय) तीनों हेतु हो जाते हैं ।६८।

यथाकथञ्चनैतस्य क्रियेत घटना यदि ।
निमित्तान्वेषणे बुद्धेर्मूलमेव विनङ्क्ष्यति ।६९।

यदि किसी तरह इसकी घटना भी की जाय तो निमित्त को खोजने में बुद्धि ही भ्रष्ट हो जाती है ।६९।

प्रयोजनशतं वापि मार्गयित्वा कथञ्चन ।
विश्रामः क्रियतां कुत्र ? तद्ज्ञानञ्च कथा भवेत् ?।७०।

किसी प्रकार सैकड़ों प्रयोजनों को खोज कर भी इसका ज्ञान कैसे होगा कि कहाँ पर विश्राम किया जाय? ।७०।

इत्येवमनवस्थाख्यं दोषमाशङ्क्य साहसम् ।
लक्षणाया न कर्त्तव्यं व्यङ्ग्यक्ष्यार्थस्य बोधने ।७१।

इस तरह इसमें अनवस्था दोष हो जाता है । अतः लक्षणा के द्वारा व्यंग्य अर्थ का बोध कभी नहीं हो सकता ।७१।

जायते स्फुटता यत्र रसस्य, नैव लक्षणा ।
प्रवेष्टुं शक्यते तत्र मुख्यार्थबाधनं विना ।७२।

जहाँ पर रस स्वयं प्रकट रहता है वहाँ पर लक्षणा की कोई जरूरत नहीं होती, क्योंकि लक्षणा बिना मुख्यार्थ बाध के होती ही नहीं ।७२।

शून्यं वासगृहं वीक्ष्येत्यादिपद्ये रसः स्फुटः ।
नात्र मुख्यार्थबाधोऽस्ति, तत्कथं लक्षणापतेत् ।७३।

"शून्यं वासगृहं वीक्ष्य ···" श्लोक में रस प्रकट रूप से है । यहाँ मुख्यार्थ का बाध नहीं होता । तब लक्षणा यहाँ कैसे आयगी ? ।७३।

मुख्य-लक्ष्यार्थसम्बन्धो द्वितीयं कारणञ्च यत् ।
इह तद् दृश्यते नैव ततोऽपि लक्षणा कथम् ?।७४।

यदि मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ के सम्बन्ध का दूसरा कारण है तो इस श्लोक में वह सम्बन्ध नहीं दीखता । तब लक्षणा कहाँ पर है ।७४।

विविक्तदेशे संवाशो मुख्यार्थोऽस्ति विलासिनोः ।
रसः सम्भोगशृङ्गाराभिधोऽर्थश्च द्वितीयकः ।७५।

दोनों विलासियों का अलग-अलग देश में रहना मुख्यार्थ है और सम्भोग शृङ्गार रस रूपी अर्थ द्वितीय है ।७५।

विलास्येकान्तसंवासे सम्भोगाख्ये रसे तथा ।
उत्पाद्योत्पादकत्वञ्च सम्बन्धः किन्न कल्प्यते ?।७६।

विलासी का एकान्त में रहना तथा सम्भोग नामक शृङ्गार के रस में उत्पाद-उत्पादक भाव सम्बन्ध क्यों नहीं कल्पित किया जाय ?।७६।

स्वायत्ता कल्पनास्त्येव सर्वस्य, सा प्रयुज्यताम् ।
किन्तूत्पाद्यत्वमायातु स्वप्रकाशे रसे कथम् ?।७७।

कल्पना सब के अधीन है । उसी का प्रयोग कीजिए, किन्तु स्वयं प्रकाश रस उत्पाद्य कैसे हो सकता है ? ।७७।

एवमेवान्य सम्बन्धोऽप्यत्र नैवोपयुज्यते ।
सम्बन्धाख्यं विना हेतुं लक्षणा वर्ततां कथम् ?।७८।

इस तरह यहाँ कोई दूसरा सम्बन्ध उपयुक्त नहीं हो सकता । सम्बन्ध रूपी हेतु के बिना लक्षणा कैसे प्रवृत्त होगी ? ।७८।

निमित्ताख्यं तृतीयं यत्कारणं लक्ष्यबोधने ।
विलासिरस प्रस्तावे तच्चापि घटते न हि ।७९।

लक्ष्यार्थ के ज्ञान होने में निमित्त नामक जो तीसरा कारण है वह रसोत्पत्ति होने में सहृदय के साथ घटित नहीं होता ।७९।

विनाप्येतत्त्रयं यैस्तु रसो लक्ष्यार्थ इष्यते ।
दूरादेव प्रणम्यास्ते रसिकैर्मर्मवेदिभिः ।८०।

इन तीनों के विना रस को लक्ष्यार्थ कहने वाले रस के मर्मज्ञ दूर से ही प्रणाम करने योग्य हैं ॥८०॥

रसादेर्बोधने दक्षा तात्पर्या न कथञ्चन ।
इति सिद्धान्तमादाय किञ्चिद् विव्रियतेऽधुना ।८१।

रस आदि के ज्ञान कराने में तात्पर्या शक्ति कदापि समर्थ नहीं है---इस सिद्धान्त को ले कर मैं यहाँ कुछ कहता हूँ ।८१।

अभिहितान्वयन्याये तथान्विताभिधानके ।
तात्पर्या भिन्नरूपैव द्विविधा परिकीर्तिता ।८२।

अभिहितान्वयवाद और अन्विताभिधानवाद तात्पर्या शक्ति के दो भिन्न-भिन्न रूप हैं ॥८२॥

वाक्ये प्रोक्तानि यावन्ति पदानि केनचिद्‌बुधा ।
पृथगर्थानि सर्वाणि भवन्तीहेति केचन ।८३।

कुछ लोगों के मतानुसार वाक्य में प्रयुक्त जो पद हैं उन सभी के अर्थ अलग-अलग होते हैं ॥८३॥

तेषामयमभिप्रायः प्रयोगार्हपदानि यत् ।
वक्ता कुतोऽपि सञ्चित्य स्वाभिप्रायं व्यनक्ति तैः ।८४।

उनका अभिप्राय यह है कि प्रयोग के योग्य पदों को (कहीं से) संग्रह करके वक्ता अपना अभिप्राय प्रकट करता है ॥८४॥

मुखान्निर्गच्छतां वक्तुरभिधाऽर्थान् पृथक्-पृथक् ।
सर्वेषां कुरुते तेषा, मिष्टसिद्धिस्तथापि न ।८५।

वक्ता के मुख से निकले हुए अभिधेय अर्थ को सब अलग-अलग सिद्ध करते हैं तथापि उनके इष्ट की सिद्धि नहीं होती ॥८५॥

तात्पर्याद्या समागत्याऽन्वयं तेषां करोत्यथ ।
तदोच्चारितवाक्यस्य साफल्यमुपजायते ।८६।

पहले वाली तात्पर्य शक्ति पदों को सम्बन्धित करती है। तब कहे गये वाक्य की सफलता होती है ।।८६।।

एतावन्मात्रकं कार्यं कृत्वैषा विरता यदि ।
एतद्भिन्नं रसाद्यर्थं किं स्याद्बोधयितुं क्षमा ?।८७।

इतना ही कार्य करके यदि (तात्पर्य शक्ति) विरत हो जाती है तो इस (तात्पर्यार्थ) के सिवा रसादि अर्थ का ज्ञान कराने में वह कैसे समर्थ हो सकती है ।।८७।।

द्वितीयो योऽत्र पक्षोऽस्ति तत्तात्पर्यं विविच्यते ।
उच्चारणात: पूर्वं वाक्यमन्वयमेत्यलम् ।८८।

यहाँ जो द्वितीय पक्ष (अन्विताभिधान) है उसका तात्पर्य मैं बताता हूँ। उच्चारण करने के पहले ही वाक्य अलग-अलग अपना सम्बन्ध प्राप्त करता है ।८८।

वक्ताऽन्वितं विधायैव वाक्यमुच्चारणात्पुरा ।
वक्तुं प्रवर्तते सम्यगन्यथा स्यादसङ्गतम् ।८९।

बोलने वाला उच्चारण के पूर्व ही पदों का अन्वय करके ठीक से बोलता है। यदि ऐसा नहीं करे तो असंगति हो जाय ।८९।

उच्चार्यैकपदं पूर्वं चिन्तयित्वाऽपरं पुनः ।
वदेद्यदि, तथा तस्य शैथिल्यं जायते धियः ।९०।

एक पद के उच्चारण करने के पूर्व दूसरे पद की चिन्ता करके यदि कोई बोलता है तो उसकी बुद्धि ढीली हो जाती है ।९०।

इष्ट प्रकाशने सा स्यादथवा पदमार्गणे ।
संलग्ना, तद्द्वयं कर्तुं न शक्नोति कथञ्चन ।९१।

इष्ट वस्तु को प्रकाशित करने या पदों को खोजने में लगी हुई (बुद्धि) दोनों काम कैसे कर सकती है ? ।९१।

अतएव स्थिरीकृत्य यद्वक्तव्यं पुरा हृदि ।
उच्चार्यते स्फुटं वक्ता, वाच्यार्थः सोऽभिधीयते ।९२।

इसलिए जो कहना होता है उसे पहले ही ठीक करके वक्ता जो उच्चारण करता है उसे वाच्यार्थ (मुख्यार्थ या अभिधेयार्थ) कहा जाता है ।९२।

तद्भिन्नोऽर्थो रसादिर्यस्तात्पर्याप्रतिपाद्यताम् ।
श्रयते, ऽतो न तात्पर्यवृत्ते भिन्नास्ति काचन ।९३।

उससे भिन्न अर्थ जो रसादि है वह तात्पर्या के द्वारा प्रतिपादित नहीं होती । अतः इस तात्पर्या शक्ति से भिन्न और कुछ नहीं है ।९३।

युक्तिरेषा समीचीना मन्यतेऽसमाभियादरात् ।
किन्तूच्चारणातः पूर्वं वाक्यं वाक्यं किमुच्यते ? ।९४।

समीचीन लोग भी इस युक्ति को आदर के साथ मानते हैं, किन्तु उच्चारण के पूर्व कौन-सा वाक्य बोला जाता है ? ।९४।

तदेव वाक्यं वक्तव्यं यदुच्येत स्फुटाक्षरम् ।
उच्यत इति वाक्यस्य व्युत्पत्तिर्जायये यतः ।९५।

वैसी ही बात बोलनी चाहिए जो साफ-साफ उच्चरित हो । कहा जाता है—ऐसे वाक्य की व्युत्पत्ति होती है ।९५।

उत वाक्यं तदेवास्ति वक्ता यावत्पदैः स्फुटम् ।
स्वाभिप्रायं व्यनक्त्याशु शुश्रूषोः सन्निधौ क्वचित् ।९६।

अथवा वाक्य वही है जिसे वक्ता स्पष्ट पदों द्वारा अपना अभिप्राय सुनने वाले के सामने प्रकट करता है ।९६।

लिखितं चापि तद्वाक्यं वाक्यं वक्तुमलं भवेत् ।
यद्दृष्ट्वा स्पष्टमेवार्थं ज्ञातुं शक्तस्तदर्थवित् ।९७।

और जो लिखा हुआ वाक्य भी है वह वाक्य बोलने में ठीक रहता है जिसे देख कर स्पष्ट रूप से अर्थ का ज्ञान करने में अर्थ लगाने वाले लोग समर्थ होते हैं ।९७।

पूर्वमुच्चारणाद्वक्तुर्विवक्षा योपजायते ।
अन्वितान् कुरुते सैव विवक्षितपदार्थकान् ।९८।

उच्चारण करने के पूर्व वक्ता के जो बोलने की इच्छा होती है वही सभी इच्छित पदों को सम्बन्धित करता है ।९८।

असौ च कथ्यते भावो वाक्येन च प्रकाश्यते ;
वदनादवहिर्यांति वाक्यं वक्तुं न शक्यते ।९९।

वाक्य द्वारा जो प्रकाशित किया जाय उसे भाव (अभिप्राय) कहते हैं। मुख से बाहर नहीं निकला वाक्य बोला नहीं जा सकता ।९९।

वाक्य प्रयोजने हेतु नं स्वपदार्थबोधनम् :
किन्त्वन्यस्मै निजाभिप्रेतार्थस्यैव प्रकाशनम् ।१००।

अपने पदों के अर्थ का ज्ञान वाक्य के प्रयोग में हेतु नहीं होता, किन्तु दूसरे के लिए वह अपना अभिप्राय ही प्रकट करता है ।१००।

स्वज्ञानमेव हेतुश्चेदन्वितोऽर्थोऽभिधीयताम् ।
कथं परावबोधः स्यादुक्तशब्दान्वयं विना ? ।१०१।

अपना ज्ञान ही यदि हेतु हो तो अन्वित अर्थ का उपयोग कीजिए। उक्त शब्दों के अन्वय बिना दूसरे को ज्ञान कैसे हो सकता है ? ।१०१।

शृणोति यो मुखाद् यस्य वाक्यं पूर्वं पृथक् पृथक् ।
तत्पदार्थाः प्रपद्यन्ते तदग्रे, ऽथ समूहतः ।१०२।

जिसके मुख से वाक्य को जो पहले अलग-अलग सुनता है उसके आगे वही पदार्थ प्राप्त होते हैं ।१०२।

पूर्वं येऽर्थाः समायान्ति तत्पुर, स्तेऽभिधाबलात् ।
ततस्तात्पर्यया वृत्या, क्रमोयं वाक्य बोधने ।१०३।

पहले जो अर्थ उसके सामने प्रकाशित किया जाता है वह अभिधा के बल से, बाद वह तात्पर्या वृत्ति द्वारा ज्ञात होता है—यह क्रम वाक्य के ज्ञान होने में है ।१०३।

इतिक्रमानुगामी चेद्रसाद्यर्थोऽभिजायते ।
तात्पर्येयाऽपि बोध्यः स्यात्तदैवाऽथोऽन्यथा कथम् ? ।१०४।

इस क्रम के अनुयायी रसादि अर्थ यदि उत्पन्न हो तो तात्पर्या वृत्ति से भी वही ज्ञान हो सकता है; अन्यथा नहीं ।१०४।

काकुसाहाय्यतोऽन्यर्थो बुध्यते, सोपि न क्षमः ।
रसाद्यर्थस्य संज्ञाने; किञ्चिदत्र विचार्यते ।१०५।

काकु की सहायता से अन्य अर्थ का ज्ञान होता है । रसादि अर्थ के ज्ञान में वह समर्थ नहीं है । इस पर यहाँ कुछ विचार किया जाय ।१०५।

भिन्नरूपोऽत्र कण्ठोत्थः शब्दो वर्णात्मको यया ।
शक्त्याऽन्यं बोधयेदर्थं सा काकुरिति कथ्यते ।१०६।

भिन्न रूप में कण्ठ से निकला हुआ वर्णनात्मक शब्द जिस शक्ति द्वारा अन्य अर्थ जो प्रकाशित करे उसे काकु कहते हैं ।१०६।

ये शब्दा कण्ठनिर्याता रसादिप्रतिपादकाः ।
न ते भिन्नप्रकारेणोच्चार्यन्ते रसवेदिभिः ।१०७।

रसादि के प्रतिपादन करने वाले जो शब्द कण्ठ से निकलते हैं वे रसज्ञ कवियों द्वारा भिन्न प्रकार से नहीं बोले जाते ।१०७।

तत्कथं स्यात्प्रवेशोऽत्र काकोः, स च कुतः परम् ।
रसादि बोधयेदर्थं; यतोस्य क्षमता न हि ।१०८।

रसादि के ज्ञान में काकु का प्रवेश कैसे और कहाँ से हो सकता है ? रसादि के ज्ञान कराने की क्षमता उसमें नहीं है ।१०८।

सूचनबुद्धितः कश्चिद्बोध्यते विषयान्तरः ।
रसादेर्बोधने सापि समर्था नेति दिश्यते ।१०९।

सूचन बुद्धि द्वारा अन्य विषय का बोध कराया जाता है; किन्तु रसादि का ज्ञान कराने में वह भी समर्थ नहीं दीखता ।१०९।

प्रपञ्च पश्चमः कोऽपि विक्रेताऽङ्गुलि संज्ञया ।
दशपञ्चादिरूप्याणि बोधयेत्त च सा भवेत् ।११०।

कोई प्रपञ्ची विक्रेता अंगुली की संज्ञा से दस-पाँच आदि रुपए का बोधन करावे तो उसे ही सूचन बुद्धि कहते हैं ।११०।

यथाक्रोप्यश्व विक्रेता क्रेतारं पूर्वसंस्थितम् ।
शतानि पञ्च तम्मूल्यं कथयन्नपरं पुनः ।१११।
वस्त्रेणाच्छाद्य पाणि स्वमङ्गुलित्रितयञ्च यत् ।
दर्शयत्यत्र सङ्केतं सैव सूचनबुद्धिका ।११२।

उदाहरणार्थ, यदि कोई घोड़ा बेचने वाला पहले से बैठा हुआ घोड़ा खरीदनेवाले को पाँच सौ रुपए मूल्य कहता हुआ कपड़ा से अपने हाथ को छिपा कर तीन अङ्गुलियों का दिखाता हुआ (तीन सौ रुपए का) संकेत करता है तो उसे ही सूचन बुद्धि कहते हैं ।१११-१२।

रसो नैतादृशो यस्तु तादृक् सङ्केततो बुधैः ।
बोध्येत, तत्र सा बुद्धी रसादेर्बोधने क्षमा ।११३।

इस तरह उस प्रकार के संकेतित अर्थ का बोध कराने वाला रस नहीं है, वह बुद्धि भी रसादि का बोधन कराने में समर्थ नहीं है ।११३।

उपपाद्यावबोधेनोपपादक प्रकल्पनम् ।
अर्थापत्तिस्वरूपं यत्र तद्बोध्यो रसादिकः ।११४।

सिद्ध करने योग्य अर्थ का ज्ञान कराने में दूसरे अर्थ की कल्पना अर्थापत्ति का स्वरूप है । वह भी रसादि का बोध कराने में असमर्थ है ।११४।

उपपाद्योऽस्ति साध्यात्मा हेतुश्चैवोपपादकः ।
व्याप्यव्यापक सम्बन्धोपेक्ष्यते साध्यहेतुनोः ।११५।

जो साध्य है वही प्रयोग करने योग्य है और जो साधन (हेतु) है वह उसका बोधक है । व्याप्य और व्यापक भाव सम्बन्ध साध्य और हेतु में रहता है ।११५।

व्यापको वाच्यरूपोऽस्ति व्याप्यरूपो रसादिकः ।
रसादि व्याप्यवाच्यादि नंहि कुत्रापि दृश्यते ।११६।

व्यापक वाच्यरूप है और रसादि व्याप्य रूप । कहीं भी रसादि व्याप्य और वाच्य दोनों नहीं देखे जाते ।११६।

यद्वा हेतुपरिज्ञात्साध्यज्ञानं विधीयते ।
वाक्यश्रवणमात्रेण नरसादि स्फुटत्यलम् ।११७।

अथवा हेतु के ज्ञान होने से साध्य का ज्ञान होता है । केवल वाक्य सुनने से ही रसादि का ज्ञान नहीं होता ।११७।

विभावादिपरिज्ञानाद् ज्ञायते यद्रसादिकः ।
अतोऽर्थापत्तिवेद्योसौ न कथञ्चन विद्यते ।११८।

विभावादि के ज्ञान से रसादि का ज्ञान होता है । अतः अर्थापत्ति के द्वारा उसका ज्ञान नहीं हो सकता ।११८।

यद्वोपपाद्यरूपोऽस्ति हेतु, र्यश्चोपपादकः ।
साध्यभूतो, ऽत्र सम्बन्धः पूर्वसिद्धः परस्परम् ।११९।

अथवा रसादि उपपाद्य रूप है और हेतु उसका उपपादक तथा दोनों का सम्बन्ध ही उसका साध्य तो यह सिद्ध होता ही है ।११९।

रसो न पूर्वसिद्धोऽस्ति पदार्थो, येन जायताम् ।
वाच्यादिहेतुभूतस्य पदार्थस्य समन्वयः ।१२०।

रस पहले से ही सिद्ध नहीं होता । जिससे पदार्थ हो वह (रस) नहीं हो सकता । वाच्यादि अर्थ के हेतु होने से पदार्थ का समन्वय होता है ।१२०।

अनुमानेन सम्वेद्यो रसादिर्वर्तते नवा ।
उपजीव्येति यत्किञ्चिद्विचारः क्रियतेऽधुना ।१२१।

अनुमान द्वारा रसादि (रस, रसाभास, भाव, भावाभास) ज्ञान करने योग्य है अथवा नहीं – इसी पर मैं कुछ विचार करता हूँ ।१२१।

अनुमानं भवेत्तात्र, यत्नैतस्याच्चतुष्टयम् ।
पक्षः साध्यश्च हेतुश्च दृष्टान्तश्चेत्यदूषितम् ।१२२।

अनुमान तो वहीं होता है जहाँ ये चार स्पष्ट हों—पक्ष, साध्य, हेतु और दृष्टान्त ।१२२।

कस्यचिद्वस्तुनो यत्र दृष्ट्वा हेतुं तदाश्रयम् ।
ज्ञानं भवति, पक्षोऽसौ कथ्यते तर्कवेदिभिः ।१२३।

जहाँ किसी वस्तु के हेतु देख कर उसके आश्रित ज्ञान होता है उसे तर्कज्ञ लोग पक्ष कहते हैं।१२३।

ज्ञानञ्च क्रियते यस्य वस्तुनो हेतुसंश्रयात् ।
साध्यरूपं तदेवास्ति हेतुमच्चापि कथ्यते ।१२४।

हेतु को लेकर जिस वस्तु का ज्ञान किया जाता है वही साध्य और वही हेतुमान भी कहलाता है ।१२४।

साध्यस्य वस्तुनो व्याप्य सम्बन्धेन व्यवस्थितः ।
तद्ज्ञानमूलभूतो यो हेतुः स उच्यते बुधैः ।१२५।

जो व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध से साध्य वस्तु के ज्ञान का मूलभूत हो उसे हेतु कहते हैं ।१२५।

तत्समं पूर्वमन्यत्र दृष्टञ्चापि परीक्षितम् ।
दृष्टान्तत्वमुपायाति साध्यरूपस्य वस्तुनः ।१२६।

पहले उसके समान अन्यत्र कहीं देखा जाय अथवा परीक्षित किया जाय वह साध्य वस्तु का दृष्टान्त कहलाता है ।१२६।

अनुमानस्य सर्वत्र यदुदाहरणं मतम् ।
पूर्वं तदेव निर्दिश्य पश्चाद्वक्ष्ये रसादिकम् ।१२७।

सभी जगह अनुमान का जो उदाहरण है उसे पहले कह कर ही रसादिक विषय कहूँगा ।१२७।

पर्वतो वह्निमान् धूमान्महानसवदत्र हि ।
प्रस्तुतं सर्वमेवास्ति पक्षादिकचतुष्टयम् ।१२८।

पर्वत अग्नि सहित है क्योंकि धुआँ हो रहा है (रसोई घर से धुआँ निक-

लते देख आग का अनुमान हो जाता है)। यहाँ चारों (पक्ष, साध्य, हेतु और दृष्टान्त) प्रस्तुत हैं।१२८।

पक्षोऽत्र पर्वतो ज्ञेयः साध्यो वह्निश्च वर्तते ।
हेतुर्धूमश्च दृष्टान्तो महानसमिति स्थितिः ।१२९।

यहाँ पर्वत पक्ष, अग्नि साध्य, धूम हेतु तथा रसोई घर दृष्टान्त है ।१२९।

यथा महानसात्कोऽपि निःसरन्तं विलोकयन् ।
धूमं, तदन्तर्निविश्य वह्निं पश्यति तद्युतम् ।१३०।
तथैव पर्वताद्धूमं निःसरन्तं विलोक्य च ।
वह्निं तर्कयते, धूमो यतोऽस्ति वह्नि संश्रितः ।१३१।

जैसे कोई रसोई घर से निकलता हुआ धुआँ देख कर उस (रसोई घर) के भीतर घुस कर आग देखता है, उसी प्रकार पर्वत से धुँआँ निकलते देख कर वह अग्नि का तर्क करता है कि जहाँ धुआँ रहता है वहाँ उसका आश्रय आग रहती ही है ।१३०-१३१।

यदि पक्षो विरुद्धः स्याद्धेतुं दृष्ट्वापि तत्र च ।
सम्यङ् न तर्क्यते साध्यं विरुद्धाश्रयता कुतः ?।१३२।

यदि पक्ष विरुद्ध हो तो वहाँ पर हेतु देख कर भी ठीक तर्क (ज्ञान) नहीं होता क्योंकि साध्य विरुद्ध का आश्रय नहीं रह सकता है ।१३२।

प्रातर्विलोक्यते धूमः शीतकाले ह्रदेऽपि यत् ।
तत्रानुमीयते नैव वह्नि, स्तोये कुतो ह्यसौ ?।१३३।

उदाहरणार्थ, जाड़े (शीत काल) में प्रातः काल जलाशय में धुआँ देखा जाता है। वहाँ आग का अनुमान नहीं हो सकता क्योंकि जल में आग कैसे रहेगी ? ।१३३।

एवमेवाथ यत्रापि न हेतुर्निश्चितो यदि ।
स्थित आभासमात्रेण, साध्यबोधे न कारणम् ।१३४।

इसी प्रकार जहाँ हेतु यदि निश्चित नहीं हो; केवल उसका अभाव हो तो वह साध्य का कारण नहीं होता ।१३४।

येतु ब्रुवन्ति साध्योऽस्ति रसस्तत्रेति कल्पना ।
पक्षसाध्यादयः स्पष्टं विद्यन्ते नात्र संशयः ।१३५।

जो लोग कहते हैं कि रसादि अनुमान द्वारा साध्य है, तो इस कल्पना में पक्ष, साध्य, दृष्टान्त आदि स्पष्ट रूप से विद्यमान हैं—इसमें सन्देह नहीं है ।१३५।

शब्दश्चाभिनयः पक्षो रसः साध्यश्च, हेतुताम् ।
विभावप्रमुखा यान्ति, दृष्टान्तस्तत्समोऽपरः ।१३६।

शब्द ही अभिनय होता है, पक्ष; रस साध्य होता है, विभाव आदि हेतु हो जाते हैं और उसी के समान कोई दूसरा दृष्टान्त होता है ।१३६।

कामिनोर्निभृतक्रीडाविषयो य उदाहृतः ।
तत्र शब्दात्मकं वाक्यं पक्षत्वेनावगम्यते ।१३७।

कामी और कामिनी का एकान्त में क्रीड़ा जो कहा गया है वहाँ शब्दात्मक वाक्य ही पक्ष होता है ।१३७।

विभावप्रमुखास्तत्र हेतुत्वेन व्यवस्थिताः ।
तानालोक्यैव तद्व्याप्य सम्भोगाख्यो रसः स्फुटः ।१३८।

विभावादि (विभाव, अनुभाव, सञ्चारी भाव) वहाँ पर हेतु रूप से वर्तमान रहते हैं। उन्हीं को देख कर उस व्याप्त सम्भोग नामक शृङ्गार रस का अनुमान होता है ।१३८।

विविच्यतेऽत्र यत्किञ्चिद्रसस्य स्फुटतां प्रति ।
इति रीत्या रसः सिद्धो यादृक्, किं तादृशो नु सः ?।१३९।

रस के प्रेरक क्या हैं ?—इस पर मैं यहाँ कुछ विचार करता हूँ। इस रीति से रस सिद्ध होता है, किन्तु वह होता है कैसे ?।१३९।

यदि तत्त्वं तदा तस्य सम्बन्धः केन जायते ?
विलासिमिथुनेनाथो श्रोतृवर्गेण वा पुनः ?।१४०।

यदि ऐसी बात है तो रस का सम्बन्ध किससे होता है ? विलासियों के जोड़े से या सुनने वाले से ?।१४०।

यदि स्यात्कामिसम्बन्धो न हि तत्त्वं रसस्य तत् ।
श्रोतुरात्मावभासोऽस्ति तत्तत्त्वं हि यथार्थतः ।१४१।

यदि रस से विलासियों का सम्बन्ध हो तो उसका यथार्थ रूप वह नहीं हुआ। सुनने वाले की आत्मा में ही उसका आभास होता है ।१४१।

यदि सर्वत्र सम्भोगश्रृङ्गाराख्यं रसं प्रति ।
स एव स्याद्विभावादिहेतु, स्तत्त्, ध्रुवो ह्यसौ ।१४२।
नोचेदनिश्रितत्वात्व हेतुतां जातु न व्रजेत् ।
अनैकान्तिकहेतुत्वा द्धेत्वाभासोऽभिजायते ।१४३।

यदि सब जगह सम्भोग श्रृङ्गार के प्रति विभावादि हेतु हो तब तो निश्चय ही ठीक है। नहीं तो, निश्चित नहीं होने के कारण वे हेतु नहीं हो सकते। हेतु के एकान्तिक नहीं होने से हेत्वाभास हो जाता है ।१४२-१४३।

हेतोराभासता यत्र नानुमानं हि सिध्यति ।
तदा तत्रानुमानेन रसज्ञानं कथं भवेत् ।१४४।

जहाँ हेत्वाभास होता है वहाँ अनुमान की सिद्धि नहीं होती। तब अनुमान के द्वारा वहाँ रस का ज्ञान कैसे होगा ?।१४४।

यद्वा— रसस्यैकतमस्यापि भिन्नरूपा अनेकशः ।
विभावप्रमुखाः सन्ति कथं ते तस्य हेतवः ।१४५।

(अथवा) एक भी रस के विभिन्न रूप विभावादि हेतु हैं। तब उस रस के हेतु वे कैसे हो सकते ?।१४५।

न च धूमातिरिक्तो हि वह्नेः साध्यस्य हेतुताम् ।
यातुं शक्नोति, तद्भिन्न विभावा दिरनेकशः ।१४६।

साध्य अग्नि का हेतु धूम के अलावा दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता। उससे भिन्न होने पर विभाव आदि अनेक (हेतु) हो जायेंगे ।१४६।

रत्यादिरेकरूपश्चेत् स्थायिभावो रसं प्रति।
हेतुः स्यादथ तद्व्याप्य रसः साध्यो न संशयः।१४७।

रस के प्रति स्थायीभाव रत्यादिक एक ही रूप हैं। उस साध्य से व्याप्य यदि हेतु हो तो रस की सिद्धि निःसन्देह हो जाती है।१४७।

अत्र किञ्चिद्विवेचनीयम् (यहाँ कुछ विचार करने योग्य है)——

इयञ्चेत्कल्पना कैश्चित् क्रियेत्, सापि नोचिता।
सर्वत्र दृश्यये तत्त्वं पार्थक्यं हेतु साध्ययोः।१४८।

इस प्रकार की कल्पना किसी ने की है जो ठीक नहीं है चूंकि हेतु और साध्य का पार्थक्य बराबर देखा जाता है।१४८।

न धूमो वह्निरूपोऽस्ति द्वयं तत्तु पृथक् पृथक्।
रत्यादौ रसरूपोऽस्ति न पार्थक्यं तयोः पुनः।१४९।

धूम अग्निरूप नहीं है; दोनों अलग-अलग हैं। रत्यादि रस का रूप है। तब दोनों का पार्थक्य नहीं हो सकता।१४९।

अभिनेतृप्रयुक्तश्चेद्भावः पक्षत्वमाव्रजेत्।
तत्प्रयुक्तो विभावादिर्हेतुः स्याद्रससाधने।१५०।

यदि अभिनेत्री प्रयुक्त हो तो भाव पक्ष में ही वह होगा और उसका प्रयोग यदि विभाव पक्ष में हो तो रस के साधन में वह कारण बन जायगा।१५०।

एतच्चापि न वक्तव्यं, तद्विभावेन यत्स्फुटम्।
न तद्रसस्वरूपं हि, न हेतुः स रसं प्रति।१५१।

यह नहीं कहना चाहिए कि विभाव के द्वारा रस प्रकट होता है। रस का स्वरूप यह नहीं कहा जा सकता। रस के प्रति वह हेतु नहीं हो सकता।१५१।

रामानुकारिणा रङ्गे दर्शितोऽभिनयो यदि।
पक्षः स्यात्तत्र निष्पन्नो विभावो हेतुतां व्रजेत्।१५२।

राम का अनुकरण करने वाला (नट) रंगशाला में अभिनय करता है।

वहाँ यदि अभिनय रस सिद्ध हो तो विभाव हेतु हो सकता है ।१५२।

तं दृष्ट्वैवाथ सीतास्थरतिमान् राम इत्यलम् ।
तर्क्यतैतत्स्वरूपं न रसस्यास्ति, कुतो नु सः ? ।१५३।

उसे (नट को) देख कर सीता में स्थित राम का जो रति भाव है वही रस रूप क्यों नहीं है ? ।१५३।

नर्तकाभिनयं दृष्ट्वा रामं मत्वा च तं पुनः ।
सीता विषयिणी तत्र रतिः साध्वनुमीयते ।१५४।

नट का अभिनय देख तथा उसी को राम समझ कर सीता विषयक रति का अनुमान किया जाता है ।१५४।

रामसम्बन्धिनी सा स्यादथवा कस्यचिद्भवेत् ।
न स्यात्कथश्चनैषा स्वप्रकाशानन्द चिन्मयी ।१५५।

वह रति राम सम्बन्धी हो या किसी अन्य सम्बन्धी, वह स्वप्रकाश आनन्द द्वारा ज्ञानस्वरूप नहीं हो सकता ।१५५।

किन्तु तद्भावनाद्वारा भावकैर्भावनात्मभिः ।
स्वप्रकाशादिरूपोऽस्ति भाव्यमानो रसादिकः ।१५६।

किन्तु उस विभावादि की भावना द्वारा सिद्ध किया हुआ रस अनुभव किया जाता है ।१५६।

पान्थात्र संस्तरो नास्ति ग्रामे पाषाणभूतले ।
वसस्यद्य वस त्वञ्चेत्प्रेक्ष्योन्नतपयोधरम् ।१५७।

हे पथिक ! यहाँ पत्थर के बने हुए गाँव में विछावन नहीं है। उन्नत (उठे हुए) पयोधर ( स्तन अथवा मेघ) देख कर यदि यहाँ रहना हो तो रहो ।१५७।

इष्टार्थोऽत्रानुमानेन ज्ञायते वा न वा स्फुटम् ।
विविच्यते यथासाध्यं, स्थाप्यते विदुषां पुरः ।१५८।

यहाँ अनुमान से इष्ट अर्थ ज्ञात होता है अथवा नहीं ?—इस पर मैं

यथासाध्य विचार करता हूँ और उसे विद्वानों के समक्ष रखता हूँ ।१५८।

उपभोगक्षमस्त्वञ्चेदिहास्वेति कयाचन ।
द्योत्यते पथिकं दृष्ट्वा, साधनं संस्तरादिकम् ।१५९।

"यदि उपभोग में समर्थ हो तो यहाँ रहो"—यह किसी पथिक को देख नायिका प्रकट करती है । बिछावन आदि साधन है ।१५९।

इत्यस्य वस्तुनश्चेत्स्याद्द्योतनं संस्तरादिभिः ।
तदैवैतस्य साध्यस्य हेतुः स्यात्संस्तरादिकम् ।१६०।

इसे (रस वस्तु को) बिछावन आदि से यदि प्रकट किया जाय तभी उस (साध्य रस) का हेतु बिछावन आदि हो सकता है ।१६०।

नोचेद्धेतुत्वबाहुल्ये हेत्वाभासोऽभिजायते ।
अनैकान्तिकहेतुत्वात्सिद्धिर्नैवानुमानतः ।१६१।

नहीं तो, हेतुओं के बाहुल्य से हेत्वाभास हो जायगा । हेतु के एकान्तिक नहीं होने से रस की सिद्धि नहीं होगी ।१६१।

पयेण वर्द्धते वेगो नद्याः, पारे गृहं तव ।
मनोवेगं स्थिरीकृत्य स्थितिरत्र विधीयताम् ।१६२।

नदी का वेग तेजी से बढ़ता है और तुम्हारा घर नदी के पार है । अतः मन को स्थिर करके यहीं पर ठहर जाओ ।१६२।

तदेवात्रापि वस्त्वस्ति साधनं तन्न वर्तते ।
कथं साध्यस्य तस्यैव ज्ञानं स्यात्साधनान्तरात् ?।१६३।

यहाँ यही अर्थ है । यहाँ साधन नहीं है । अन्य साधनों द्वारा साध्य का ज्ञान कैसे होगा ?।१६३।

धूमतोऽन्यनिमित्तेन वह्नेर्ज्ञानं न जायते ।
कथमेकस्य साध्यस्य ज्ञानं स्यात्साधनद्वयात् ?।१६४।

धूम के सिवा दूसरी चीज से आग का ज्ञान नहीं होता । एक ही साध्य का ज्ञान दो साधनों से कैसे होगा ?।१६४।

दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्यां रवेरपि ।
तस्यामेव रवोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे ।१६५।

दक्षिण दिशा में सूर्य का भी तेज मन्द हो जाता है उसी दक्षिण दिशा में पान्ड्य नामक राजा रघु के तेज को नहीं सहन कर सके। (अर्थात् रघु का तेज सूर्य के तेज से भी अधिक है।) ।१६५।

यत्रत्या भानुतेजांसि सोढवन्तो, न तत्र ते ।
सेहिरे राघव तेजो, यत एतत्ततोऽधिकम् ।१६६।

जहाँ के रहने वालों ने सूर्य के तेज को सह लिया, किन्तु वहीं पर वे रघु का तेज नहीं सह सके, क्योंकि रघु का तेज सूर्य के तेज से भी अधिक है ।१६६।

तेजोनिधी रविः सर्वतेजस्विनां निदर्शनम् ।
न्यूनत्वेनात्र निर्दिष्टो व्यतिरेकस्ततः स्फुटः ।१६७।

तेजों के निधि सूर्य सभी तेजस्वियों के नमूना हैं। यहाँ सूर्य के तेज को भी न्यून बतला दिया गया है ।१६७।

व्यतिरेकोह्यलङ्कारः साध्यरूपोऽत्र वर्तते ।
नहि सर्वत्र सूर्यस्य न्यग्भावेनैव बोध्यते ।१६८।

यहाँ व्यतिरेकालङ्कार साध्य है। सब जगह सूर्य की नीचता (न्यूनता) से उसका बोध नहीं हो सकता ।१६८।

सरोवरजले काचिन्मज्जनोन्मज्जने रता ।
चक्रे युक्तं वियुक्तञ्च मिथुनं चक्रवाकयोः ।१६९।

किसी (नायिका) ने तालाब के जल में स्नान करने के क्रम में ऊब-डूब कर चकवा के जोड़े को मिला दिया और अलग भी कर दिया ।१६९।

तात्पर्यमेतस्यास्ति तद्द्वन्द्वं कामिनीमुखम् ।
चन्द्रं मत्वा निशं ज्ञात्वा वियुङ्क्ते संयुनक्त्यथ ।१७०।

इसका अर्थ यह है कि कामिनी के मुख को चन्द्रमा समझ कर वह चकवे का जोड़ा रात जान कर अलग हो जाता था और जब वह कामिनी पानी में डुबकी लगाती थी तो (मुखचन्द्र की अनुपस्थिति में) दिन समझ कर वह मिलन कर लेता था ।१७०।

तद्द्वयस्य वियोगेन संयोगेनानुमीयते ।
कामिन्या वदनं चन्द्रोऽन्यथाऽयोगादिक: कथम् ?।१७१।

तब दोनों (चकवा-चकवी) के वियोग और संयोग से यह अनुमान किया जाता है कि कामिनी का मुख चन्द्रमा है। अन्यथा उनका मिलना और बिछड़ना कैसे होगा ?।१७१।

तद्वियोगस्य हेतुस्चेच्चन्द्र एको न चापरः।
तदा तदाननं चन्द्रो, रूपकालङ्कृतिः स्थिरा ।१७२।

उसके (चकवा के) वियोग का हेतु एक चन्द्रमा ही है। वहाँ उस (नायिका) का मुख चन्द्रमा है। इससे रूपकालङ्कार सिद्ध होता है ।१७२।

तयोर्यदि वियोगस्य हेतुरन्योऽपि जायते ।
समुत्त्रासादिकं वस्तु, नावकाशोऽनुमानिनाम् ।१७३।

यदि उन दोनों के वियोग का हेतु कुछ और हो, जैसे—भय वगैरह, तो उसके अनुमान का भी अवकाश नहीं है ।१७३।

एवमेवान्यलक्ष्येषु हेत्वाभासं विलोकयन् ।
साहित्ये नानुमानेन संसिद्धिं पर्यकल्पयन् ।१७४।

इस प्रकार अन्य लक्ष्य में हेत्वाभास देखते हुए साहित्य में अनुमान के द्वारा रस की सिद्धि नहीं की जाय ।१७४।

स्मृतिः संस्कारजन्यं हि ज्ञानं, सैव रसादिकः ।
भावनारूपसंस्कारजन्यत्वा, त्तस्य तुल्यता ।१७५।

संस्कार से उत्पन्न ज्ञान को ही स्मृति कहते हैं, वही रसादिक है क्योंकि भावनारूप संस्कार से उत्पन्न हो कर वह (स्मृति) उसके (रसादिक के) तुल्य होता है ।१७५।

अवकाशो मिलेद् यावद्विचारस्य प्रसारणे ।
न तावत्सीमितं कुर्य्यात्स्वविचारं विचक्षणः ।१७६।

जब तक विचार को फैलाने का समय मिले तब तक पण्डित लोग अपने विचार को सीमित नहीं करें ।१७६।

संस्कारः कीदृशः सोऽस्ति, जनको यः स्मृतेर्भवेत् ।
भावना घटते तत्र नवेत्यत्र विविच्यते ।१७७।

वह संस्कार कैसा है जो स्मृति का जनक होता है। वहाँ भावना (संस्कार) घटती है या नहीं—मैं इस पर यहाँ विचार करता हूँ ।१७७।

ज्ञानस्य स्मृतिरूपस्य जनकत्वेन निश्चितः ।
स संस्कारोऽस्ति, यः पूर्वगोचरीकृतभावकः ।१७८।

स्मृतिरूप ज्ञान के जनक होने से ही संस्कार बनता है जो पहले ही भाव का ज्ञान कराता है ।१७८।

यथा कश्चिद्विलोक्याब्जं स्वप्रिया वदनं स्मरेत् ।
पूर्वानुभूत तुल्यस्य दर्शनात्तस्य भावना ।१७९।

उदाहरणार्थ, यदि कोई कमल को देख कर अपनी प्रिया के मुख का स्मरण करे तो पूर्व दर्शन के तुल्य ही भावना बनती है ।१७९।

यद्वा कदाचिदेकान्ते स्थितः कामी प्रियामुखम् ।
प्रत्यक्षं कुरुते स्वान्तस्तद् ज्ञानं पूर्वदृष्टजम् ।१८०।

अथवा कभी एकान्त में स्थित (कोई) कामी यदि प्रिया के मुख को अपने अन्तःकरण में प्रत्यक्ष करता है तो वह ज्ञान पहले देखा हुआ है ।१८०।

अथवैतादृशं ज्ञानं प्रत्यभिज्ञा बलादपि ।
जायते, सा न संस्कारो हेत्वाभासस्ततः स्फुटः ।१८१।

अथवा उस प्रकार का ज्ञान प्रत्यभिज्ञाबल से भी होता है। वह संस्कार नहीं, हेत्वाभास है ।१८१।

यथा कश्चित्पुरा दृष्टः पुनर्दृष्टिपथे गतः ।
अयं स वर्तते नूनमियं चापि स्मृतिः स्थिरा ।१८२।

जैसे पहले देखा गया कोई यदि बाद में सामने आवे तो वह भी निश्चित ही स्मृति है ।१८२।

न कश्चिदत्र संस्कारः प्रत्यभिज्ञा तु केवला ।
अनुभूतपदार्थस्य भूयोप्यनुभवात्मिका ।१८३।

इसमें यहाँ कोई संस्कार नहीं, केवल प्रत्यभिज्ञा है। अनुभव किये हुए पदार्थ का पुनः भी अनुभव होता है ।१८३।

न कश्चिद् दृष्टपूर्वो हि पदार्थो रसनात्मकः ।
न च तत्सदृशज्ञानापेक्षी च वर्ततेऽपि सः ।१८४।

रस नामक पदार्थ किसी से पहले ही नहीं देखा जाता और न तो उसके समान ज्ञान की अपेक्षा ही की जाती है ।१८४।

भावना चापि संस्कारस्तादृशो वर्तते न हि ।
यः पूर्वगोचरीभूतपदार्थस्यानुभावकः ।१८५।

भावना संस्कार वैसा नहीं होता जो पहले देखे हुए पदार्थ का अनुभव कराता हो ।१८५।

अत एव स्मृतिर्नास्ति रसादिज्ञानरूपिणी ।
विलक्षणः पदार्थः स केवलानुभवात्मकः ।१८६।

अतः स्मृति रसादि ज्ञान का रूप नहीं हो सकती । रस तो विलक्षण पदार्थ है जो केवल अनुभव करने योग्य है ।१८६।

इति रीत्या समस्तास्ताः पूर्वाचार्यैरुपासिताः ।
रसादिबोधने शक्ता नाऽभवन् शक्तयः क्वचित् ।१८७।

इस प्रकार (रीति से) पहले के आचार्यों द्वारा बतलायी गयी वे समस्त शक्तियाँ रसादि का ज्ञान कराने में समर्थ नहीं हुईं ।१८७।

अतोऽन्या काचनोपास्या सा स्याल्लोकोत्तरा, यतः ।
लोकोत्तरचमत्काररसादेर्बोधिका भवेत् ।१८८।

अतः कोई अन्य शक्ति खोजनी चाहिए, क्योंकि वह (शक्ति) लोकोत्तर होगी । लोकोत्तर चमत्कार ही रसादि ज्ञान कराने वाली है ।१८८।

सैवास्ति व्यञ्जना नाम तद्वथापारस्तथाञ्जनम् ।
व्यक्तीकरणमेतस्य सामर्थ्यञ्च विलक्षणम् ।१८६।

उस (शक्ति) का नाम व्यञ्जना है और उसका काम है प्रकट करना। उसमें व्यक्त करने का विलक्षण सामर्थ्य है ।१८९।

विलक्षणत्वं तच्चात्र प्रसिद्धाद्भिन्नरूपकम् ।
घट प्रदीपरूपोऽस्ति न्यायोऽत्र लोकविश्रुतः ।१६०।

वह विलक्षणता भिन्न रूप का है जो संसार में घट (घड़ा) और दीपक के न्याय से प्रसिद्ध है ।१९०।

प्रदीपेन घटो यत्तु व्यज्यते तिमिरावृतः ।
तद्व्यञ्जिकास्ति या शक्तिः, पृथक्त्वप्रतिपादिका ।१६१।

अन्धकार से घिरा हुआ घट दीपक से देखा जाता है। उस घट की व्यञ्जिका शक्ति ही दोनों (घट और दीपक) को पृथक कर देती है ।१९१।

घटप्रदीपयोः स्पष्टं पार्थक्यमवलोक्यते ।
अथवा पूर्वसिद्धस्य व्यञ्जकोऽस्ति प्रदीपकः ।१६२।

घट और दीपक का पार्थक्य स्पष्ट देखा जाता है अथवा पहले से जो सिद्ध है उसी का व्यञ्जक दीपक है ।१९२।

वस्त्वादिव्यञ्जने नाम पृथक्त्वं सम्भवेदपि ।
व्यङ्ग्यव्यञ्जकयो, स्तत्तु रसादेर्व्यञ्जने कुतः ।१६३।

वस्तु आदि की व्यञ्जना में भिन्नता होने पर भी रस आदि की व्यञ्जना में व्यङ्ग्य-व्यञ्जक भाव कैसे सम्भव है ? ।१९३।

दध्यादि न्यायतः सिद्धी रसादेर्नात्र संशयः ।
व्यङ्ग्य व्यञ्जकताऽत्रास्ति दध्नो दुग्धाम्ल योगवत् ।१६४।

दध्यादि (दही आदि) के न्याय से रसादि की सिद्धि होती है—इसमें यहाँ सन्देह नहीं है। दही रूप व्यङ्ग्य का व्यंजक यहाँ दूध और खटाई का योग है ।१९४।

यथा दुग्धाम्ल योगेन दधिरूपं स्फुटत्यलम् ।
तथैवात्र विभावादियोगेनैव रसः स्फुटः ।१९५।

जैसे दूध और खटाई के योग से दहीरूप प्रकट होता है उसी प्रकार विभावादि के योग से ही रस प्रकट होता है ।१९५।

इति रीत्या विभावादि-रसयोर्नास्ति भिन्नता ।
व्यङ्ग्यव्यञ्जकयोरित्थं वैलक्षण्यं विलोक्यते ।१९६।

इस रीति से विभावादि और रस में भिन्नता नहीं है—इस प्रकार व्यङ्ग्य और व्यंजक की विलक्षणता दीखती है ।१९६।

हेतु-साध्य स्वरूपं चेदत्रापि कल्प्यतां बुधैः ।
दधिभूतस्य साध्यस्य हेतु र्दुग्धाम्लयोजना ।१९७।

यदि हेतु साध्य का स्वरूप हो तो यहाँ भी पंडितों की कल्पना है कि निर्मित दही नामक साध्य का हेतु दूध और खटाई का योग है ।१९७।

साध्य-साधनमेतत्तु सामान्य साध्य हेतुवत् ।
पृथक्त्वं तत्र सर्वत्र न पृथक्त्वमिहास्ति यत् ।१९८।

यदि यह साध्य और साधन सामान्य साध्य और हेतु की तरह हो तो वहाँ पृथकत्व सर्वत्र रहता है, किन्तु यहाँ पृथकत्व नहीं है ।१९८।

इत्थं विलक्षणीभूत रसादि प्रतिपादिका ।
विलक्षणैव शक्तिः स्यात्व्यञ्जना साभिधीयते ।१९९।

इस प्रकार विलक्षण होती हुई रसादि का ज्ञान करानेवाली विलक्षण ही शक्ति है जिसे व्यंजना कहते हैं ।१९९।

यद्वा लोकोत्तरं ज्ञानं रसरूपं विभाव्यते ।
लौकिकेन कथं तस्य साधनेनाभिव्यक्तिका ।२००।

अथवा रसरूप का ज्ञान लोकोत्तर ज्ञान है । लौकिक साधनों से उसका ज्ञान कैसे हो सकता है ? ।२००।

यथा लोकोत्तरं ज्ञानं ब्रह्म ज्ञानं हि जायते ।
आत्माभिन्नं तथैवात्र रसज्ञानं कवेरपि ।२०१।

उदाहरणार्थ; लोकोत्तर ज्ञान ब्रह्मज्ञान है जो आत्मा से अलग ही रहता है। उसी प्रकार कवि के हृदय में रसज्ञान भी है ।२०१।

"रसो वै ब्रह्म" इत्युक्ते रसो भिन्नो न ब्रह्मणः ।
तत्कथं लौकिकं ज्ञानं रसज्ञानं भवेदिह ।२०२।

"रस ही ब्रह्म है"—इस कथन के अनुसार रस ब्रह्मज्ञान से भिन्न नहीं है। अतः लौकिक ज्ञान रसज्ञान से भिन्न कैसे हो सकता है ? ।२०२।

साधकानां यथैवात्र ब्रह्मरूपं दधात्यलम् ।
रसानुभूति कालेऽपि सैवावस्था कवेरपि ।२०३।

जैसे साधक का अनुभव ब्रह्मरूप धारण कर लेता है, रस के अनुभव के समय वही अवस्था कवि की भी रहती है ।२०३।

यदीत्थमत्र कथ्येत ब्रह्मज्ञानं यथा भवेत् ।
तथैव रसज्ञानं च व्यञ्जनाऽत्र कुतः पुनः ? ।२०४।

यदि यहाँ ऐसा कहा जाय कि जिस प्रकार ब्रह्मज्ञान होता है उसी प्रकार रस का भी ज्ञान होता है तो व्यंजना की क्या आवश्यकता है ? ।२०४।

अनुभूति समत्वेऽपि रसस्य ब्रह्मणस्तथा ।
वैलक्षण्यं रसे किञ्चिद्‌ विद्यते ब्रह्मणोऽपि हि ।२०५।

रस और ब्रह्मज्ञान की अनुभूति में समता होने पर भी रस में ब्रह्मज्ञान की अपेक्षा विलक्षणता कुछ अधिक है ।२०५।

सिद्धान्तमिति क्षमादाय "सर्वं ब्रह्ममयं जगत्" ।
स्वास्मिन् वा यत्र कुत्रापि ब्रह्मरूपवगाहताम् ।२०६।

"समस्त संसार ब्रह्ममय है"—इस सिद्धान्त को लेकर अपने में अथवा किसी दूसरे में ब्रह्मरूप का ज्ञान होता है ।२०६।

किन्तु वाक्यान्न सर्वं हि रसात्मकमिहेक्ष्यते ।
अनुभूति विना ज्ञानं रसस्यस्यात्कथं पुनः ।२०७।

किन्तु वाक्य के द्वारा सभी रस का ज्ञान नहीं होता, अनुभव के बिना रस का ज्ञान कैसे हो सकता है ? ।२०७।

तादृक् रस स्वरूपाभिव्यञ्जिका यदि व्यञ्जना ।
लोकोत्तरा सा ज्ञातव्या पराभ्यश्चविलक्षणा ।२०८।

इस प्रकार रस के रूप को व्यक्त करने वाली यदि व्यंजना (शक्ति) है तो उसे लोकोत्तर समझें। पहले कही गयी (शक्तियों) से यह विलक्षण है।२०८।

रसादिव्यञ्जकाः सन्ति विभावप्रमुखाः स्फुटाः ।
न तेभ्यो भिन्नरूपोऽस्ति रसादिः कोऽपि वस्तुतः ।२०९।

विभावादि रसादि के व्यंजक हैं। यदि उनसे (विभावादि से) भिन्न रूप रसादि का नहीं है तो वह (रस) है कौन-सी वस्तु ? ।२०९।

इत्थं विलक्षणास्त्यत्र व्यङ्ग्यव्यञ्जकता यदि ।
कथं साधारणी शक्ति र्व्यञ्जिका स्यादिमान् प्रति ।२१०।

इस तरह व्यङ्ग्य और व्यंजक की विलक्षता यदि यहाँ है तो साधारण शक्ति अभिधा आदि व्यंजिका कैसे हो सकती है ? ।२१०।

नवनीतं पयोमध्ये विद्यते, तन्न लभ्यते ।
विना मन्थादिकं, तद्वद्रसस्यापि गतिः स्थिरा ।२११।

दूध में मक्खन रहता है किन्तु विना मथना आदि के वह नहीं मिलता। रस की भी ऐसी ही गति है ।२११।

यथा समुद्रतो देवै रत्नानि सुमहान्त्यपि ।
यत्नैर्विना न लब्धानि पूर्वंत, स्तत्कथं रसः ? ।२१२।

जैसे, समुद्र के बड़े-बड़े रत्न देवताओं द्वारा किये गये यत्न के विना नहीं मिले। तब रस का ज्ञान (विना यत्न के) कैसे हो सकता है ? ।२१२।

उपायेषु च सर्वेषु क्षीणेषु क्रमशो यदि ।
नेष्टसिद्धि, स्तदान्योऽपि कर्त्तव्यो बलवत्तरः ।२१३।

यदि सभी उपायों के क्रमशः क्षीण होने पर इष्ट सिद्धि नहीं हो तो दूसरा बलवत्तर उपाय करना चाहिए ।२१३।

अभिधाप्रमुखाः सर्वे ह्युपायाः क्षीणविक्रमाः ।
रसादिबोधने; तर्हि व्यञ्जनैवादृता भवेत् ।२१४।

अभिधा आदि जितनी भी शक्तियाँ हैं वे सब अपने-अपने अर्थ-बोधन में क्षीण हो जाती हैं। इसीलिए रसादि के ज्ञान में व्यंजना(शक्ति)ही ठीक है।२१४।

कुत्रापि द्व्यर्थकः शब्दः प्रयुक्तो वाक्ययोजने ।
एकत्रार्थे, कथं सोऽर्थो बुध्येत व्यञ्जनां विना ।२१५।

यदि दो अर्थ वाले शब्द का उपयोग कहीं वाक्ययोजना द्वारा एकत्र अर्थ में किया जाय तो व्यंजना के बिना उस (दूसरे) अर्थ का ज्ञान कैसे हो सकता है ? ।२१५।

यतस्तत्रार्थयोर्द्वन्द्वं तस्मिञ्छब्दे व्यवस्थितम् ।
संकेतेन,ऽभिधा शक्तिस्तद्द्वयस्यैव बोधिका ।२१६।

उस शब्द में संकेत द्वारा दोनों अर्थ वर्तमान हैं। उन दोनों (अर्थों) ही का बोध करानेवाली अभिधा शक्ति है ।२१६।

श्लेषोऽपि तत्र नैवास्ति इष्ट एकार्थ एव हि ।
काऽन्यमर्थं निराकृत्य स्वेष्टमर्थं प्रकाशयेत् ? ।२१७।

यदि वहाँ श्लेष भी नहीं हो और एक ही अर्थ इष्ट हो तो अन्य अर्थ को हटा कर अपने इष्ट अर्थ को प्रकाशित करता है ।२१७।

तत्रैव व्यञ्जनागत्य साहाय्यं प्राप्य किञ्चन ।
संयोगप्रमुखै, रर्थमिष्टं द्योतयते स्फुटम् ।२१८।

वहीं पर कोई सहायता प्राप्त कर व्यञ्जना आती है और संयोग (-वियोग) आदि (उपायों) से इष्ट अर्थ को प्रकट करती है ।२१८।

यथा-सशङ्खचक्रोयं हरिरित्युच्यते क्वचित् ।
शङ्ख चक्रेति संयोगाद्विष्णुरेवाभिधीयते ।२१९।

जैसे—कहीं पर शङ्ख-चक्र युक्त को हरि कहते हैं तो शङ्ख-चक्र के संयोग से विष्णु ही उसका अर्थ होता है ।२१९।

हरिशब्दे ह्यनेकार्थाः सङ्केतेन व्यवस्थिताः ।
सर्वे तेऽभिधयाबोध्या, व्यञ्जना विष्णु बोधिनी ।२२०।

हरि शब्द में संकेत से अनेक अर्थ हैं । ये सभी (अर्थ) अभिधा से बोध्य हैं, किन्तु विष्णु (अर्थ) का बोध व्यञ्जना ही कराती है ।२२०।

एवमेव वियोगादिसम्बन्धेनान्यबोधिका ।
व्यञ्जनैवान्यथा न स्यादिष्टापत्तिः कथञ्चन ।२२१।

इसी प्रकार वियोगादि के संबंध से अन्य (अर्थ) का भी बोध होता है । व्यञ्जना ही अन्य अर्थों का बोध नहीं करा कर इष्ट अर्थ का बोध कराती है ।२२१।

लक्ष्यार्थ बोधिका यास्ति लक्षणा सर्वसम्मता ।
रूढिः प्रयोजनं वापि निमित्तं तत्र निश्चितम् ।२२२।

लक्ष्यार्थ को बोधन कराने वाली जो (शक्ति) है उसे सर्व सम्मत से लक्षणा कहते हैं । उसमें निमित्त रूढ़ी या प्रयोजन ही होती है ।२२२।

अत्रैव च प्रधानं यन्निमित्तं हि प्रयोजनम् ।
तस्य ज्ञानं कथा शक्त्या, जायते व्यञ्जनां विना ? ।२२३।

यहाँ (इस लक्ष्यार्थ में) ही जो प्रयोजन निमित्त है वही प्रधान है । उसका ज्ञान व्यञ्जना के बिना कैसे हो सकता है ? ।२२३।

गङ्गायां घोष इत्यत्र प्रवाहश्च तटं क्रमात् ।
विबोध्यार्थमुपक्षीणे शक्तिराद्याऽपरा तथा ।२२४।

"गङ्गायां घोषः"—यहाँ प्रवाह और तट का अर्थ बतला कर क्रमशः अभिधा और लक्षणा दोनों क्षीण हो जाते हैं ।२२४।

शीतत्वपावनत्वादि निमित्तं यच्च विद्यते ।
तद्ज्ञानार्थमवश्यं हि व्यञ्जनोपासिता भवेत् ।२२५।

यहाँ शीतत्व और पावनत्व आदि जो निमित्त हैं उनके ज्ञान के लिए व्यञ्जना की उपासना अवश्य ही करनी चाहिए ।२२५।

कश्चिदर्थोऽपरार्थस्य बोधको यत्र वर्त्तते ।
कथमन्यार्थबोधः स्यादर्थशक्ति विना क्वचित् ।२२६।

यदि कोई अर्थ दूसरे अर्थ का बोधन कराता है तो यदि दूसरी अर्थ-शक्ति नहीं हो तो अन्य अर्थ का बोध कैसे कराता है ? ।२२६।

अभिधा लक्षणा वापि तात्पर्याऽप्यपराऽपि वा ।
अर्थशक्तिर्मता नैव, केवला व्यञ्जनैव सा ।२२७।

अभिधा, लक्षणा, तात्पर्या अथवा दूसरी शक्ति अर्थशक्ति नहीं है । केवल व्यञ्जना ही वह (अर्थशक्ति) है ।२२७।

प्रतिवेशिनि ! मद्गेहे दृष्टिर्देया व्रजाम्यहम् ।
तनूल्लेखनलग्रन्थियुतं स्रोतो जलार्थिनी ।२२८।

ऐ पड़ोसिन ! मेरे घर पर भी नजर रखना । शरीर को रगड़नेवाली नलग्रन्थियुक्त नदी को मैं जल लाने जा रही हूँ ।२२८।

एतस्य हि प्रधानोऽर्थः स्रोतोयानं जलार्थतः ।
परकान्तनखाङ्कादिगोपनश्च परो मतः ।२२९।

इसका मुख्य अर्थ जल के लिए नदी जाना है तथा अन्य पुरुष के नखक्षत आदि को छिपाना दूसरा अर्थ है ।२२९।

नवनीतनिभस्यास्य ज्ञान शक्त्या कया भवेत् ? ।
शब्दोऽत्र व्यञ्जको नास्ति तादृगर्थस्तु केवलः ।२३०।

नवनीत (मक्खन) के समान इस (व्यङ्ग्य) का ज्ञान किस शक्ति से हो चूँकि यहाँ शब्द व्यञ्जक नहीं है, अर्थमात्र वैसा है ।२३०।

यदीत्यत्राभिधीयेत तादृशशब्दयोगतः ।
तादृगर्थो विनिष्क्रान्तो, नेत्यर्थं वाच्यं कदाचन ।२३१।

यहाँ वैसे शब्द के योग से वैसा कह कर वैसा अर्थ निकलता है—ऐसा नहीं कहना चाहिए ।२३१।

अन्वयव्यतिरेकाभ्यां परीक्षेत यथाविधि ।
सोऽर्थः शब्दाश्रितो वापि तद्भिन्नो वा प्रतीयते ।२३२।

विधिपूर्वक अन्वय और व्यतिरेक से परीक्षा करनी चाहिए कि वह अर्थ शब्दाश्रित है या उससे भिन्न प्रतीत होता है ।२३२।

तत्तच्छब्दनिवेशेन यदि सोऽर्थः प्रतीयते ।
तदा शब्दाश्रितो ज्ञेयोऽन्यथा चार्थाश्रितः स्फुटः ।२३३।

उन-उन शब्दों के योग से यदि वह अर्थ मालूम हो तो उसे शब्दाश्रित कहना चाहिए, वरना (वह) अर्थाश्रित है ।२३३।

तद्भिन्नशब्दसन्दोहादपि योऽर्थोऽभिधीयते ।
तदर्थादेव तद्भिन्नस्वरूपोऽर्थः प्रतीयते ।२३४।

उससे भिन्न अन्य शब्दसमूह से भी जिस अर्थ का ज्ञान होता है उसी अर्थ के द्वारा उससे भिन्न अर्थ भी मालूम होता है ।२३४।

व्यञ्जनेयमतो शक्तिरर्थानामपि विद्यते ।
कथं तदन्यशक्तीनां समाना वा तदार्थिका ? ।२३५।

अर्थों की भी शक्ति व्यञ्जना ही होती है। तब अन्य शक्तियों के समान वह कैसे हो सकती है ? ।२३५।

कस्याश्चिद्रूपमात्रस्य वर्णनं यत्र विद्यते ।
चेष्टाया वा, कया तत्र शक्त्या स्वादोनुभूयते ? ।२३६।

जहाँ किसी नायिका के रूपमात्र या चेष्टा का वर्णन हो वहाँ किस शक्ति से रस का अनुभव होता है ? ।२३६।

विदेशस्थोऽथवा कश्चिद् घनं दृष्ट्वाम्बरे ततम् ।
न क्वापि स्थैर्यमाप्नोति कथमत्र रसोभवेत् ? ।२३७।

अथवा विदेश में वर्तमान कोई आकाश में मेघ देख कर कहीं भी स्थिरता नहीं पाता है— यहाँ रस कैसे होगा ? ।२३७।

शत्रुमायान्तमालोक्य सज्जितं रणादुर्दमम् ।
तन्मुखं सहसा गच्छन् कथं द्योतयते रसम् ? ।२३८।

सजे हुए तथा संग्राम की इच्छा रखे हुए शत्रु को आता देख उसके सामने जाते ही रस का ज्ञान कैसे होता है ? ।२३८।

व्याघ्रस्याक्रमणं दृष्ट्वा स्विन्नगात्रः सवेपथुः ।
कातराक्षिमुखः कश्चिन्न रसं द्योतयेत्स्फुटम् ।२३९।

बाघ का आक्रमण देख जिसके शरीर में कम्प और स्वेद होता है तथा मुख और आँखों में कातरता आती है वह किसी भी रस को प्रकट नहीं कर सकता ।२३९।

सारांश इति यत्रास्ति वर्णनं वा प्रदर्शनम् ।
विभावप्रमुखानां हि, रसस्तत्र कुतो भवेत् ।२४०।

सारांश यह है कि जहाँ यह वर्णन या प्रदर्शन है वहाँ विभाव आदि का ही ज्ञान है। वहाँ रस कैसे होगा ? ।२४०।

भवेदपि कथञ्चिच्चेत्तत्सम्बन्धी वरं भवेत् ।
श्रोतृणां दर्शकानां वा कदापि न भवेपुनः ।२४१।

यदि उस (रस) के सम्बन्धी दूसरा (अर्थ) हो तो सुनने वाले और देखने वाले को (रस) नहीं होगा ।२४१।

यदीत्थमिह तर्क्येत जायते भावनावशात् ।
किन्तु काप्यस्ति सा शक्तिर्ययोन्मिषतिभावना ।२४२।

यदि यहाँ ऐसा तर्क किया जाय कि भावना के बल पर (ऐसा अर्थ) होता है तो वह. कौन-सी शक्ति है जिसके द्वारा भावना का उन्मेष होता है ? ।२४२।

अन्यथा; नायिका कुत्र, रतिस्तस्याश्च केनचित् ।
वाक्यं तद्द्योतकं किञ्चिद्वर्तते भिन्नमेव हि ।२४३।
तन्निर्माता परः कश्चित्तद्वक्ताप्यपरः पुनः ।
श्रोतृसम्बन्धिनी काचिद्भावनाप्यैव वर्तते ।२४४।
एवं परम्पराप्राप्तां रतिं सा भावयेत्कथम् ? ।
न चेत्काप्यपरा शक्तिर्भवेल्लोकातिशायिनी ।२४५।

नहीं तो नायिका कहाँ है और रति उसकी किसके साथ है; उस रस का द्योतक कोई वाक्य भिन्न ही है, उसका (वाक्य का) निर्माता कोई दूसरा

है और उस (वाक्य) का वक्ता कोई दूसरा है तो सुनने योग्य भावना कोई दूसरी ही है— यदि कोई दूसरी लोकातिशायिनी शक्ति नहीं हो तो इस तरह परम्परा से प्राप्त रति को वह कैसे प्रकट करेगी ? ।२४३-५।

व्यञ्जनैवान्यनिष्ठां तां श्रोतॄणां हि सचेतसाम् ।
भावनायां समावेश्य सम्यग् भावयते रसम् ।२४६।

उन अन्यनिष्ट सहृदय श्रोताओं को व्यञ्जना ही भावना में मिला कर सम्यक् (ठीक से) रस का ज्ञान कराता है ।२४६।

कोऽपि भावयिता वाक्यं कुरुते कर्णगोचरम् ।
अभिधा तत्पदार्थांस्तान् प्रत्यक्षान् कुरुते पुनः ।२४७।

भावना करने वाला कोई भी (व्यक्ति) वाक्य सुनता है । बाद उन पदों के अर्थ को अभिधा ही सामने लाती है । २४७।

तदन्तर्निष्ठरत्यादिभावं योजयते पुनः ।
व्यञ्जना काप्यपूर्वैव भावनायां, तदैव सा ।२४८।

तब उसके अन्दर वर्तमान रत्यादि भाव को जोड़ती है । वह कोई अपूर्व व्यञ्जना ही है जिसे भावना भी कहते हैं ।२४८।

योगीव ब्रह्म, तद्ध्याननिष्ठः संयतमानसः ।
आत्माभिन्नरसावस्थां सद्य एव प्रपद्यते ।२४६।

जिस तरह योगी ब्रह्म को प्राप्त करता है उसी तरह (श्रोता) ध्याननिष्ठ हो मन को वश में करके अपने (आत्मा) से अभिन्न रसावस्था को सद्यः प्राप्त करता है ।२४९।

ब्रह्मज्योतिर्यथा जीवं तदन्तर्मिलनोत्सुकम् ।
योजयित्वा तयोरैक्यं कुरुते व्यञ्जना तथा ।२५०।

जिस प्रकार जीव और ब्रह्मज्योति परमात्मा से मिलने के लिए उत्सुक रहते हैं उसी प्रकार व्यञ्जना (शक्ति) दोनों (श्रोता एवं रस) का योग करा कर एक कर देती है ।२५०।

अत एव रसादीनां बोधने व्यञ्जनां बुधाः ।
रसनाख्यां परां शक्ति कल्पयन्तीह वस्तुतः ।२५१।

इसीलिए पण्डित लोग रसादि के बोध कराने में 'रसन्' नामक दूसरी शक्ति (व्यञ्जना) की यहाँ कल्पना करते हैं ।२५१।

साहित्यमर्मविज्ञानामिष्टसिद्धिर्न यां विना ।
तेषामेव मनः प्रीत्यै यत्किञ्चित्सा विवेचिता ।२५२।

जिस (व्यञ्जना) के बिना काव्य-मर्मज्ञों की इष्ट सिद्धि नहीं होती उन्हीं (काव्य-मर्मज्ञों) को प्रसन्न करने के लिए मैंने उस (व्यञ्जना) पर कुछ विचार किया है ।२५२।

ग्राह्याऽग्राह्याऽथवेयं स्याद्रुचिं प्रति विवेकिनाम् ।
निर्भराऽस्ति, मया, किन्तु स्वं मतं प्रतिपादितम् ।२५१।

विवेकियों की रुचि के अनुसार यह ग्राह्य अथवा अग्राह्य हो सकता है। यह उन्हीं पर निर्भर है। किन्तु मैंने अपना मत प्रतिपादित कर दिया है ।२५१।

।। इति व्यञ्जनावृत्तिविचारः ।।

महाकवि मिश्रजी के अन्य
सुरभारती ग्रन्थ

(प्रकाशित)

१. श्रीदेवीचरितं महाकाव्यम्
२. कथाकाव्यसंग्रहः
३. रसचन्द्रिका
४. वधूसेवा माहात्म्यम्

(अप्रकाशित)

१. रुक्मिणीमङ्गलम् महाकाव्यम्
२. भारतवर्षेतिहासः (श्लोकबद्धः)
३. श्रीगुरुवंशवर्णनम्
४. खण्डकाव्यम्
५. स्फुट श्लोकाः

महाकवि श्रीमत्पण्डित
रामावतार मिश्र
(जन्म १२-१-१८९९
मृत्यु २८-६-१९८४)
ग्राम-बेनीपुर; पो० टेकारी
जिला—गया (बिहार)

सम्पादक

**डॉ० शिवशङ्कर पण्डित**
जन्म (२०-८-१९३३)
ग्राम—सेनारी, पो०—बढ़ौगी,
जिला—गया (बिहार)
संप्रति—रीडर, अङ्ग्रेजी विभाग,
सेण्ट जेवियर्स कॉलेज, राँची
लेखक—छँटनी (उपन्यास)